प्यासी आत्माएँ

लेखक
इरफ़ान ख़लीली
अनुवादक
एस० कौसर लईक़

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
"अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।"

प्राक्कथन

जी हाँ! — ये मात्र क़िस्से-कहानियाँ नहीं हैं — बल्कि अमर और उज्ज्वल सत्य-कथाएँ हैं और इसी धरती पर नबी (सल्ल०) के समय में घटित घटनाएँ हैं, जिन्हें कहानी का रूप दे दिया गया है।

कहने को तो मात्र ये दस कहानियाँ हैं। लेकिन इनमें से प्रत्येक अपने अन्दर पैग़म्बरी की सत्यता—अल्लाह की वाणी का आकर्षण, सत्य की खोज और इश्क़ की तड़प जैसे तथ्य समोए हुए है।

इन कहानियों का अध्ययन अगर अल्लाह ने चाहा तो आपके लिए लाभप्रद होगा और ईमान की ताज़गी का साधन बनेगा।

—लेखक

काया पलट

"अब्दुल्लाह की माँ कहाँ की तैयारी है?" उमर बिन ख़त्ताब ने अपनी एक रिश्तेदार महिला लैला (रज़ि०) बिन अबी हसमा से पूछा, जो ऊँट पर सवार होने जा रही थीं।

ख़त्ताब के बेटे उमर की आवाज़ सुनकर लैला (रज़ि०) चौंक पड़ीं। वह चिंतित-सी नज़र आने लगीं। वे अच्छी तरह जानती थीं कि उमर इस्लाम दुश्मनी में बहुत सख़्त हैं और मुसलमानों को तकलीफ़ पहुँचाने में सब से आगे हैं। फिर भी उन्होंने साहस से काम लिया और ख़त्ताब के बेटे को उत्तर दिया–

"हम लोगों ने वतन छोड़ देने का फ़ैसला कर लिया है।"

"आख़िर क्यों?" ख़त्ताब के बेटे ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"वतन न छोड़ें तो क्या जान दे दें?" अब्दुल्लाह की माँ लैला (रज़ि०) ने अत्यन्त प्रभावपूर्ण शैली में कहना शुरू किया—"मक्का की धरती हमारे ऊपर तंग कर दी गई है। तुम लोगों ने हमें सताने पर कमर बाँध रखी है।"

ख़त्ताब के बेटे ख़ामोश खड़े सुनते रहे।

"हम वतन छोड़ने पर मजबूर कर दिए गए हैं और अब यह निर्णय ले लिया है कि जब तक ख़ुदा हमारे लिए सुख-शाँति का कोई मार्ग पैदा न कर देगा, हम वतन से दूर ही रहेंगे।"

अब्दुल्लाह की माँ की आवाज़ रोने के कारण भर्रा रही थी। ये दर्द भरे शब्द उमर के दिल पर जाकर लगे। उमर तड़प उठे, मगर कर ही क्या सकते थे।

"ख़ुदा तुम्हारी सहायता करे—उम्मे-अब्दुल्लाह!" उनकी वेदना में डूबी हुई आवाज़ सुनाई दी और फिर वे एक ओर चल दिए। उनके क़दम धीरे-धीरे उठ रहे थे, जैसे वे किसी गहरे विचार में खोए हुए हों। चलते-चलते वे बड़बड़ाने लगे—

> "इस सारे विष की गाँठ मुहम्मद है। उसी के कारण क़ुरैश की सारी व्यवस्था बिगड़ गई और उनमें फूट पड़ गई, ख़ानदान बँट गए, भाई-भाई का दुश्मन हो गया। इसलिए क्यों न फ़साद की इस जड़ को ही काट दिया जाए और मुहम्मद का काम तमाम कर दिया जाए।"

यह सोचते ही उमर की चाल में तेज़ी आ गई और वह तेज़-तेज़ क़दम उठाते

हुए अपने मकान की ओर रवाना हो गए।

(2)

हाथ में नंगी तलवार, आँखें लाल, चेहरा ग़ुस्से से भरा हुआ तेज़-तेज़ क़दमों के साथ ख़त्ताब के बेटे उमर अर्क़म के घर की तरफ़ चले जा रहे थे। रास्ते में अब्दुल्लाह के बेटे हज़रत नईम (रज़ि०) मिले, जो गुप्त रूप से मुसलमान हो चुके थे। उन्होंने ख़त्ताब के बेटे को इस हाल में देखा तो उनका माथा ठनका। आगे बढ़कर उन्होंने पूछा—"ख़त्ताब के बेटे—! कहाँ का इरादा है?"

"क़िस्सा तमाम करने जा रहा हूँ" उमर ने निर्णयात्मक भाव में जवाब दिया।

"किसका क़िस्सा तमाम करने?" नईम (रज़ि०) ने फिर पूछा।

"उसी का—जो अपने आपको ख़ुदा का रसूल बताता है।"

उमर को इतने ग़ुस्से में देखकर हज़रत नईम (रज़ि०) बहुत ही चिन्तित हो उठे और उनका मस्तिष्क तेज़ी के साथ उन उपायों पर विचार करने लगा, जिनके द्वारा उमर के विचारों में परिवर्तन लाया जा सकता था। अन्ततः वे उनसे बोले, "ख़ुदा की क़सम उमर! तुम धोखे में हो!"

"क्या मतलब?" अचानक उमर के पैरों में ब्रेक-सा लग गया।

"उमर! यह न समझो कि मुहम्मद (सल्ल०) की हत्या करके तुम इस मुसीबत से छुटकारा पा लोगे।" नईम (रज़ि०) ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ उनके विचारों को परिवर्तित करने की कोशिश की।

"क्यों—?" उमर की गरज़ती आवाज़ पुनः वातावरण में गूँज उठी।

"यह आग—घर-घर लग चुकी है। दूर क्यों जाते हो, ज़रा अपने घरवालों की ख़बर लो।" हज़रत नईम (रज़ि०) ने बड़ी ही कूटनीति से हज़रत उमर (रज़ि०) के ध्यान को मोड़ दिया।

उमर यह सुनते ही चौंक पड़े और हैरत के साथ नईम (रज़ि०) से बोले—"साफ़-साफ़ कहो, नईम! घरवालों से तुम्हारा क्या आशय है?"

तुम्हारे बहनोई सईद बिन ज़ैद (रज़ि०) और तुम्हारी बहन फ़ातिमा बिन्त ख़त्ताब (रज़ि०) मुसलमान हो चुकी हैं।' नईम (रज़ि०) ने ज़रा चुभते हुए अन्दाज़ में जवाब दिया।

यह सुनते ही उमर तिलमिला उठे और एक बार फिर उनका चेहरा ग़ुस्से से तमतमाने लगा। उनके क़दम उसी वक़्त बहनोई के घर की ओर मुड़ गए।

(3)

उमर ने दरवाज़े की कुण्डी इतने ज़ोर से खटखटाई कि घरवाले चौंक पड़े।

"कौन—?" अन्दर से फ़ातिमा बिन्त ख़त्ताब (रज़ि०) की आवाज़ आई।

"मैं हूँ— ख़त्ताब का बेटा!" उमर ने गरजदार आवाज़ में जवाब दिया।

उमर की आवाज़ सुनते ही सभी घबरा गए। उस समय दोनों मियाँ-बीवी अरत के बेटे हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि०) के पास बैठे क़ुरआन पाक पढ़ रहे थे। आवाज़ सुनकर ख़ब्बाब (रज़ि०) घर के अन्दर जाकर एक कोने में छिप गए। हज़रत सईद (रज़ि०) ने जाकर कुण्डी खोल दी। उमर ग़ज़बनाक शेर की तरह घर में दाख़िल हुए। उनकी निगाहें उस अपरिचित को ढूँढ़ रही थीं, जिसकी आवाज़ उन्होंने बाहर से सुनी थी। लेकिन जब उन्हें बहन और बहनोई के अलावा कोई तीसरा नज़र न आया तो वह अत्यन्त क्रोधित लहजे में उन दोनों से बोले।

"तुम लोग क्या पढ़ रहे थे?"

डर के कारण दोनों ने कोई जवाब नहीं दिया।

"मुझे मालूम हुआ है कि तुम दोनों अपने पूर्वजों का धर्म छोड़कर साबी (विधर्मी) हो गए हो।" मारे ग़ुस्से के उमर के मुँह से झाग निकलने लगा।

"यदि पूर्वजों के धर्म में सच्चाई न हो तो क्या उस धर्म को स्वीकार नहीं किया जा सकता, जिसमें सच्चाई हो?" हज़रत सईद (रज़ि०) ने हिम्मत करके उत्तर दिया।

बहनोई का उत्तर सुनते ही उमर उत्तेजित होकर उनपर टूट पड़े। शौहर को पिटता हुआ देखकर हज़रत फ़ातिमा बिन्त ख़त्ताब (रज़ि०) उन्हें बचाने के लिए आगे बढ़ीं। उमर ने उन्हें भी मारना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि उनका सिर फट गया और ख़ून बहने लगा। फ़ातिमा (रज़ि०) को भी जोश आ गया और वे बिफरी हुई शेरनी की तरह गरजीं।

"उमर—! अगर तुम ख़त्ताब के बेटे हो तो याद रखो मैं भी ख़त्ताब की बेटी हूँ, जो कुछ तुम्हें करना हो कर लो। अब हम इस्लाम से नहीं फिर सकते।"

बहन का निडर सम्बोधन और दृढ़ता की यह स्थिति देखकर हज़रत उमर के क़दम डगमगा गए और ग़ुस्सा ठण्डा पड़ गया। बहन के सिर से बहता हुआ ख़ून देखकर उन्हें पश्चाताप हुआ। अन्ततः सामने पड़े हुए तख़्त पर बैठ गए। फिर बहन से कहने लगे—

"तुम लोग क्या पढ़ रहे थे, ज़रा मैं भी देखूँ!"

"तुम नापाक हो! क़ुरआन को सिर्फ़ पाक लोग ही छू सकते हैं। पहले नहा कर पाकी हासिल करो।" बहन ने सच्ची बात कह दी।

पाक होने के बाद उमर (रज़ि०) ने क़ुरआन के वे पन्ने पढ़ना शुरू किए जिनकी हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि०) शिक्षा दे रहे थे। पढ़ते ही पढ़ते उमर (रज़ि०) के चेहरे का रंग बदलने लगा। यहाँ तक कि जब इस आयत पर पहुँचे—

> "ईमान लाओ अल्लाह और उसके रसूल पर और उसमें से ख़र्च करो, जिसका उसने तुम्हें अधिकारी बनाया है।" (क़ुरआन, 57:7)

तो उमर सहसा पुकार उठे—

"अशहदु अल्ला-इला-ह इल्लल्लाहु व अशहदु अन्-न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहू।"

(मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई इष्ट-पूज्य नहीं और गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के बन्दे और रसूल हैं।)

यह आवाज़ सुनते ही हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि०) बाहर निकल आए और उमर (रज़ि०) से बोले—"ऐ ख़त्ताब के बेटे, मुबारक हो! इस सोमवार को नबी (सल्ल०) ने दुआ की थी कि "ऐ अल्लाह! ख़त्ताब के बेटे उमर और हिश्शाम के बेटे उमर (अबू जह्ल) में से जो तुझे अधिक प्रिय हो उसके द्वारा इस दीन को शक्ति प्रदान कर।" हमें यक़ीन था कि यह सौभाग्य तुम्हारे ही हिस्से में आएगा।

"ख़ब्बाब! मुझे मुहम्मद (सल्ल०) का पता बताओ, ताकि मैं उनके पास जाकर मुसलमान हो जाऊँ।" हज़रत उमर (रज़ि०) हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि०) से बोले।

"नबी (सल्ल०) इस समय अरक़म बिन अरक़म (रज़ि०) के मकान पर होंगे।" ख़ब्बाब (रज़ि०) ने ख़ुश होते हुए जवाब दिया।

हज़रत उमर (रज़ि०) फिर अरक़म के घर की तरफ़ रवाना हो गए। उधर उनकी बहन हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) बिन्त ख़त्ताब और उनके शौहर सईद (रज़ि०) बिन ज़ैद मारे ख़ुशी के फूले नहीं समा रहे थे। उनके भाई ने अभी थोड़ी देर पहले इस्लाम के दुश्मन के रूप में अल्लाह और रसूल को झुठलाते हुए घर में प्रवेश किया था और अब वही उमर इस हाल में घर से बाहर निकले थे कि उनकी काया पलट चुकी थी, वे अल्लाह को एक मान चुके थे और उसके रसूल (सल्ल०) और उसकी किताब पर ईमान ला चुके थे। अब तो तौहीद का प्यासा तौहीद के स्रोत की ओर दौड़ा चला जा रहा था।

(4)

अर्क़म के घर की कुण्डी खटखटाई गई, लेकिन इस समय उतनी कर्कश आवाज़ पैदा नहीं हुई जितनी सईद (रज़ि०) के घर की कुण्डी से पैदा हुई थी। दोनों आवाज़ों में ज़मीन और आसमान का अन्तर था। यद्यपि खटखटानेवाला हाथ एक ही था। उस समय घृणा और क्रोध की भावना ने उसमें कठोरता पैदा कर दी थी और अब आदर और सम्मान ने उसकी कठोरता को दूर कर दिया था।

"कौन है?" अन्दर से हज़रत बिलाल (रज़ि०) की आवाज़ आई।

"मैं ख़त्ताब का बेटा उमर हूँ।" हज़रत उमर (रज़ि०) ने जवाब दिया।

हज़रत उमर (रज़ि०) की आवाज़ सुनते ही हज़रत बिलाल (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास वापस गए और निवेदन किया—

"ऐ अल्लाह के रसूल! दरवाज़े पर ख़त्ताब के बेटे उमर हैं। हमें दरवाज़ा खोलते हुए डर लगता है। वे अन्दर आकर कुछ गड़बड़ न करें!"

"दरवाज़ा खोल दो! अगर ख़ुदा ने उनके साथ भलाई का इरादा किया है, तो निश्चित ही उनको हिदायत देगा।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने तसल्ली देते हुए कहा।

"और अगर बुरे इरादे से आए हैं, तो मेरी तलवार उनके लिए काफ़ी है।" हज़रत हमज़ा (रज़ि०) ने खड़े होते हुए कहा।

दरवाज़ा खोल दिया गया और उमर (रज़ि०) अन्दर आ गए। जैसे ही उन्होंने अन्दर क़दम रखा हज़रत हमज़ा (रज़ि०) और ज़ुबैर (रज़ि०) ने उनको दायीं-बायीं भुजा से पकड़ लिया। उमर (रज़ि०) ने कोई विरोध न किया लेकिन जब उनको रसूल (सल्ल०) के सामने पहुँचाया गया तो आप (सल्ल०) ने कहा—"इन्हें छोड़ दो।"

हज़रत उमर (रज़ि०) को छोड़ दिया गया। उमर (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के सामने घुटने टेककर बैठ गए। नबी (सल्ल०) ने उनका दामन पकड़ कर खींचा और फिर मुस्कुराते हुए कहा—"ख़त्ताब के बेटे! इस्लाम क़ुबूल कर लो।" और फिर दुआ के भाव में कहा—"ऐ अल्लाह! उमर को हिदायत दे।"

हज़रत उमर (रज़ि०) की ज़बान पर तुरन्त कलिमा-ए-तय्यिबा जारी हो गया। जैसे ही सहाबा (रज़ि०) के कानों में ये शब्द पहुँचे वे ख़ुशी से बेक़ाबू हो गए और इतने ज़ोर से 'अल्लाहु अकबर' का नारा लगाया कि मक्का की गलियाँ गूँज उठीं।

निश्चय ही नबी है...

"भाई जान—तबीअत तो ठीक है, ना?" अनीस ने अबू ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि०) से पूछा।

"हाँ—हाँ— क्यों क्या बात है?" अबू ज़र (रज़ि०) ने संजीदगी से जवाब दिया।

"मैं कई दिन से देख रहा हूँ कि आप चुप-चुप से रहते हैं।" भाई ने प्रेमपूर्ण भाव में कहा।

"नहीं अनीस! कोई विशेष बात नहीं।" अबू ज़र (रज़ि०) ने बात टालते हुए जवाब दिया।

"फिर भी आख़िर इस चुप्पी का कोई कारण तो होगा।" अनीस जैसे इरादा कर चुके हों कि कारण मालूम करके रहेंगे।

"अनीस—! कारण है भी—और— नहीं भी है।" अबू ज़र (रज़ि०) बहुत अधिक संजीदा हो गए।

"भाई जान—! आप तो शायरी करने लगे।" अनीस ने मुस्कुराते हुए कहा।

"शायर तो तुम हो अनीस— मैं शायर कब हूँ।" अबू ज़र (रज़ि०) के होठों पर भी मुस्कुराहट खेलने लगी।

"भाई जान—! आप बात टालने की कोशिश न कीजिए।" अनीस ज़िद करने लगे, "आज मैं इस उदासी की वजह मालूम करके रहूँगा।"

"अच्छा— पहले एक काम कर दोगे?" अबू ज़र (रज़ि०) ने अपने भाई से कहा।

"दिलोजान से!" अनीस जल्दी से बोल उठे।

"मेरे वास्ते मक्का चले जाओगे?" अबू ज़र (रज़ि०) ने उनकी आँखों में आँखें डालते हुए सवाल किया।

"क्यों— ख़ैरियत तो है भाई जान!" अनीस ने आश्चर्य से पूछा।

"तुमने भी सुना होगा कि वहाँ हाशिम के ख़ानदान में एक साहब ने नबी होने

का दावा किया है।" अबू ज़र (रज़ि०) ने भाई के चेहरे पर उसी तरह नज़रें जमाए हुए कहा।

"जी हाँ— कुछ उड़ती हुई-सी ख़बर सुनी तो है।" अनीस ने संजीदगी से जवाब दिया।

"ज़रा जाकर मालूम तो करो— वे साहब कौन हैं और क्या कहते हैं।" अबू ज़र (रज़ि०) ने आत्मविभोर होकर बात पूरी की।

"बहुत अच्छा— मैं आज ही रवाना हो जाऊँगा।" अनीस ने तत्परता के साथ उत्तर दिया।

"लेकिन देखो अनीस—! जल्द ही वापस आना, रुकना नहीं।" अबू ज़र (रज़ि०) का अनुराग और बढ़ता जा रहा था।

"नहीं भाई जान—! आप निश्चिंत रहें— जल्दी ही वापस आऊँगा।" अनीस यह कहते हुए अन्दर चले गए और सफ़र की तैयारी करने लगे।

(2)

"बहुत दिन हो गए— अनीस अब तक वापस नहीं आए।" अबू ज़र (रज़ि०) अकेले बैठे हुए अपने-आपसे बातें कर रहे थे। "देखें— क्या ख़बर लाते हैं।"

इतने में सामने से अनीस आते हुए नज़र पड़े। अबू ज़र (रज़ि०) दीवानों की तरह उनकी ओर दौड़े—"कहो अनीस! क्या ख़बर लाए?"

"मैं स्वयं उनसे मिलकर आया हूँ। उनका नाम मुहम्मद (सल्ल०) है।" अनीस ने सवारी से उतरते हुए जवाब दिया।

"मुहम्मद — कितना प्यारा नाम है।" अबू ज़र (रज़ि०) कुछ खो-से गए और फिर चौंक कर बोले—"क्या तुमने स्वयं उन्हें देखा है?"

"हाँ—हाँ— भाई जान! मैंने तो उनसे बातें भी की हैं।" अनीस ने अपने ऊपर से धूल झाड़ते हुए कहा।

"वे कैसे हैं?— अनीस!" अबू ज़र (रज़ि०) ने अत्यन्त उत्सुक होकर पूछा।

"अत्यन्त रूपवान्, सुन्दर-मुख, दमकता हुआ चौड़ा माथा, काली और अंजित आँखें, बारीक और घनी भृकुटी, काले घुंघराले बाल, सफ़ेद मोतियों जैसे चमकीले दाँत।" अनीस ने पूरे विस्तार के साथ नबी (सल्ल०) का हुलिया बयान करना

शुरू कर दिया।

"बेशक— बेशक" अबू ज़र (रज़ि०) ने अधखुली आँखों से झूमते हुए कहा।

"मध्यम आकार, मधुरवाणी, वार्तालाप के समय एक-एक शब्द स्पष्ट और अर्थपूर्ण।" अनीस ने फिर बयान करना शुरू किया "न बिलकुल ख़ामोश न अधिक बोलनेवाले, वाक्य संक्षिप्त मगर अर्थपूर्ण, उनके साथी उनके चारों तरफ़ हर वक़्त रहते हैं। जब वे कुछ कहते हैं तो साथी ख़ामोशी के साथ सुनते हैं, जब वे आदेश देते हैं, तो आज्ञापालन के लिए झपटते हैं।"

"सच कहते हो अनीस! सच कहते हो।" जैसे अबू ज़र (रज़ि०) का दिल गवाही दे रहा हो।

"दिल चाहता है कि उनको देखते ही रहें।" अनीस ने इतना कहकर बात समाप्त कर दी।

"लेकिन यह तो बताओ, उनका पैग़ाम क्या है?" अबू ज़र (रज़ि०) ने व्याकुलता के साथ पूछा।

"वे नेकी का आदेश देते हैं और बुराई से रोकते हैं।" अनीस ने उत्तर दिया।

"इतनी-सी बात से तसल्ली नहीं हुई, अनीस!" अबू ज़र (रज़ि०) फिर बेचैन से नज़र आने लगे—"मैं ख़ुद जाऊँगा उनसे मिलने।"

(3)

अबू ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि०) काबे के आँगन में खड़े हुए इधर-उधर नज़रें दौड़ा रहे थे। हर गुज़रनेवाले को ग़ौर से देखते और फिर ख़ामोश खड़े हो जाते। न वे रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को पहचानते थे और न ही किसी से पूछना चाहते थे। भाई के बताए हुए चिह्न हर गुज़रनेवाले में खोजते। इसी तरह दिन बीत गया। वे ज़मज़म का पानी पीकर काबा ही में लेट रहे।

इतने में हज़रत अली (रज़ि०) उधर से गुज़रे। देखा कि एक अजनबी आदमी काबा में लेटा हुआ है। उसके क़रीब गए और सिरहाने खड़े होकर कहने लगे।

"यह तो कोई मुसाफ़िर जान पड़ता है?"

"हाँ! मैं मुसाफ़िर ही हूँ।" अबू ज़र (रज़ि०) ने लेटे-लेटे जवाब दिया।

"आओ मेरे साथ चलो।" हज़रत अली (रज़ि०) ने उनसे कहा।

अबू ज़र (रज़ि०) उठे और अली (रज़ि०) के साथ हो लिए। वहीं खाना खाया

और रात बसर की। न अली मुर्तज़ा (रज़ि०) ने कुछ पूछा और न अबू ज़र (रज़ि०) ने स्वयं कुछ बताया। सुबह हुई तो वे फिर काबे में आ गए। दिल में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की खोज की भावना उमड़ रही थी, मगर ज़बान ख़ामोश थी। कल की तरह आज भी वे सारा दिन तलाश में रहे, लेकिन अभीष्ट मोती हाथ न आया। शाम को वह फिर ज़मज़म का पानी पीकर काबा में लेट रहे। संयोग की बात उस दिन भी अली (रज़ि०) ख़ाना-ए-काबा गए। उसी अजनबी को लेटा हुआ देखकर उसके पास पहुँचे।

"शायद तुम्हें अपना ठिकाना नहीं मिला।"

"हाँ— मेरे भाई!" अबू ज़र (रज़ि०) ने संक्षिप्त जवाब दिया।

"अच्छा मेरे साथ आओ।"

अली मुर्तज़ा (रज़ि०) अबू ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि०) को अपने मकान पर ले आए, खाना खाने के बाद अली मुर्तज़ा (रज़ि०) ने पूछा—

"ऐ भाई—! तुम कौन हो और यहाँ किस काम से आए हो?"

"किसी से न कहो तो बताऊँ" अबू ज़र (रज़ि०) ने जवाब दिया।

"न कहने का वादा करता हूँ।" अली (रज़ि०) ने सीने पर हाथ रखकर कहा।

"मैंने सुना है कि इस शहर में एक व्यक्ति है, जो अपने आपको अल्लाह का नबी बताता है।" अबू ज़र (रज़ि०) इतना कहकर चुप हो गए।

"हाँ— आगे कहो, क्या कहना चाहते हो?" हज़रत अली (रज़ि०) ने उनके चेहरे को ग़ौर से देखते हुए सवाल किया।

"मैंने अपने भाई को उनके हालात मालूम करने के लिए भेजा था।" अबू ज़र (रज़ि०) ने जवाब देना शुरू किया "मगर वह वापस जाकर मुझे संतोषजनक जवाब न दे सका। मैं स्वयं उनसे मिलने आया हूँ।"

"स्वागत है आपका, मेरे भाई!" बहुत अच्छा हुआ कि तुम्हारी मुलाक़ात मुझ ही से हुई।" अली (रज़ि०) ने कहा "मैं उनकी सेवा में जा रहा हूँ।"

"तुम उनसे मिलने जा रहे हो?" यह कह कर अबू ज़र (रज़ि०) मुलाक़ात के शौक़ में व्याकुल होकर उठ खड़े हुए।

"हाँ, मैं वहीं जा रहा हूँ, तुम भी मेरे साथ चलो।" अली (रज़ि०) ने कहा–

"धन्य है, धन्य है, मेरे भाई!" अबू ज़र (रज़ि०) की ज़बान से अनायास निकल गया।

"लेकिन— एक शर्त है।" हज़रत अली (रज़ि०) ने रुकते हुए कहा।

"वह क्या?" अबू ज़र (रज़ि०) जल्दी से बोल उठे।

"पहले मैं अन्दर जाकर देख लूँगा।" अली (रज़ि०) समझाने लगे "अगर इस वक़्त मिलना मुनासिब न होगा तो मैं दीवार से लगकर खड़ा हो जाऊँगा, जैसे कि जूते ठीक कर रहा हूँ, तुम वापस आ जाना।"

"फिर कब मुलाक़ात होगी?" अबू ज़र (रज़ि०) बहुत ही बेचैन थे।

"अगर अल्लाह ने चाहा तो कल हो जाएगी।" अली (रज़ि०) ने जवाब दिया।

"यह शर्त स्वीकार है।" अबू ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि०) जल्दी से बोल उठे।

दोनों रवाना हो गए।

(4)

अबू ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि०) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से इस्लाम के बारे में बहुत से प्रश्न किए। आप (सल्ल०) उनके हर प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर देते रहे। अन्त में अबू ज़र (रज़ि०) सहसा बोल उठे—

"ऐ अल्लाह के रसूल! अब मुझे मुसलमान कर लीजिए।"

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उनको कलिमा तय्यिबा पढ़ाने के बाद फ़रमाया—"अबू ज़र (रज़ि०) तुम अभी इस बात को छिपाए रखो और अपने वतन चले जाओ।"

"ऐ अल्लाह के रसूल! क्या हम हक़ (सत्य) पर नहीं हैं?" अबू ज़र (रज़ि०) ने सादर निवेदन किया।

"इस हक़ से बढ़कर कोई हक़ नहीं है, जो मैं लेकर आया हूँ, और जिसपर तुम ईमान लाए हो।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने पूरे जोश और विश्वास के साथ कहा।

"फिर मुझे अनुमति दीजिए कि इन झूठे ख़ुदाओं के पुजारियों में सत्य का एलान करके जाऊँ।" अबू ज़र (रज़ि०) ने भाव-विभोर होकर अनुमति माँगी।

"मुझे उनकी दुष्टता से डर लगता है, ये तुम्हें तकलीफ़ न पहुँचाएँ।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुहब्बत भरे अन्दाज़ में कहा।

"मैं मुसीबतों और तकलीफ़ों से नहीं डरता। ख़ुदा की क़सम मैं एलान करके जाऊँगा।" यह कहकर अबू ज़र (रज़ि०) काबे की ओर रवाना हो गए।

काबे के पास क़ुरैश इकट्ठा थे। अबू ज़र (रज़ि०) ने उनको सम्बोधित करके कलिमा-ए-शहादत पढ़ा। यह आवाज़ सुनते ही क़ुरैश आपे से बाहर हो गए।

"मारो-मारो! इस साबी (धर्मभ्रष्ट) को मारो!"

सभी उनपर झपट पड़े और मारने-पीटने लगे। उनको इतना मारा कि वे अधमरे-से हो गए। इतने में अब्बास (रज़ि०) आ गए। उन्होंने झाँक कर देखा और पहचान लिया, चिल्लाकर बोले–

"अरे अभागो! यह तो ग़िफ़ार क़बीले का आदमी है, जहाँ से तुम खजूरें लाते हो। अगर यह मर गया, तो तुम्हारा व्यापार ख़तरे में पड़ जाएगा।"

यह सुनते ही लोग दूर हट गए, लेकिन दूसरे दिन जब अबू ज़र (रज़ि०) ने उसी तरह सबको सुनाकर कलिमा पढ़ा, तो फिर लोगों ने मारना-पीटना शुरू कर दिया। संयोग से इस बार भी अब्बास (रज़ि०) ने बीच में पड़कर उनको छुड़ा लिया।

अन्ततः अबू ज़र (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से विदा होकर अपने वतन यसरिब को रवाना हो गए।

हत्यारा—जो ग़ुलाम बन गया

मक्का की पूरी आबादी शोक और दुख में डूबी हुई थी। हर घर से थोड़ी-थोड़ी देर के बाद रोने चिल्लाने और विलाप करने की आवाज़ें उठ रही थीं। घरों के चूल्हे ठण्डे पड़े हुए थे और चिराग़ बुझे हुए थे। रात के अंधियारे ने वातावरण को और अधिक भयावह बना दिया था।

आबादी से दूर एक निर्जन स्थान पर दो दोस्त सिर झुकाए बैठे थे। दोनों की आँखों में आँसू तैर रहे थे।

"उमैर—! बद्र की इस अपमानजनक पराजय ने तो हमें कहीं का न छोड़ा।" उमैया के बेटे सफ़वान ने ठण्डी साँस भरते हुए अपने साथी से कहा।

"सच कहते हो सफ़वान—! हम तो मुँह दिखाने के योग्य भी न रहे" उमैर इब्ने वहब ने अँधेरे वातावरण में घूरते हुए उत्तर दिया।

"और फिर बाप की हत्या ने तो जीवन को नीरस ही बना दिया।" सफ़वान ने फिर ठण्डी साँस भरते हुए कहा।

"मरनेवाले का तो सब्र आ जाता है सफ़वान—!" उमैर की थर-थराती हुई आवाज़ माहौल में उभरी "लेकिन जीते-जी की जुदाई सहन नहीं होती— आह मेरा बेटा।"

"सुना है कि मुसलमान क़ैदियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव कर रहे हैं।" सफ़वान ने तसल्ली देते हुए कहा।

"यदि मुझपर क़र्ज़ न होता!" उमैर कहे जा रहा था जैसे कि उसने सफ़वान की बात सुनी ही न हो? "और मेरे साथ बाल-बच्चों का बखेड़ा न होता तो...!"

"तो फिर तुम क्या करते उमैर?" सफ़वान ने बात काटते हुए सवाल किया।

"मैं—" उमैर ने सफ़वान को घूरते हुए जवाब दिया "मैं अभी मदीना रवाना हो जाता और मुहम्मद (सल्ल०) का काम तमाम करके बद्र में मरनेवालों का बदला ले लेता।"

यह बात सुनकर सफ़वान की आँखों में चमक पैदा हो गई। उसने उमैर के कंधों को झंझोड़ते हुए कहा, "सच कहते हो—उमैर—!"

"तुमने कभी मुझे झूठ बोलते सुना है?" उमैर ने सफ़वान की आँखों में आँखें डालते हुए कहा।

"उमैर—!" सफ़वान बहुत ही ठहरे हुए अन्दाज़ में बोला, "तुम निश्चिन्त रहो, मैं तुम्हारा सारा क़र्ज़ चुका दूँगा।"

"सफ़वान—!" उमैर की ज़बान से सहसा निकल गया।

"हाँ, हाँ उमैर—! सारा क़र्ज चुका दूँगा।" सफ़वान ने विश्वास दिलाते हुए कहा, "और सिर्फ़ इतना ही नहीं, बल्कि अगर तुम मारे भी गए तो मेरे रहते हुए तुम्हारे बच्चे भूखे नहीं मर सकते।"

उमैर की आँखों में एक चमक-सी पैदा हो गई। उसकी निगाहें मदीने की तरफ़ उठ गईं। वह शून्य में तकने लगा। उसके चेहरे के उतार-चढ़ाव से ज़ाहिर हो रहा था कि वह मानसिक उथल-पुथल में डूबा है। सोचते-सोचते वह चौंक पड़ा और फिर इधर-उधर देखने लगा, जैसे उसका लड़का उसे आवाज़ दे रहा हो। वह फिर सफ़वान से बोला।

"सफ़वान—! अपने वादे पर क़ायम रहोगे?"

"उमैर—! सूरज पूर्व के बजाए पश्चिम से निकल सकता है— लेकिन—सफ़वान अपने वचन से नहीं फिर सकता।" सफ़वान ने आत्मविश्वास के साथ जवाब दिया।

"उमैर की आँखें एक बार फिर चमकने लगीं। उसके हाथ की पकड़ तलवार की मूठ पर और दृढ़ हो गई।

"मुझे विश्वास है।" उमैर ने सफ़वान से कहा, "लेकिन सफ़वान—"

"अब लेकिन—वेकिन क्या—?" सफ़वान बात काटकर बोल उठा।

"एक बात का ख़्याल रहे।" उमैर ने सफ़वान की बात सुनी-अनसुनी कर दी।

"वह क्या?" सफ़वान उमैर के और निकट हो गया।

"जब तक कोई फ़ैसला न हो जाए यह रहस्य हम दोनों के बीच ही में रहना चाहिए।" उमैर ने सफ़वान की आँखों में आँखें डालकर रहस्यमय ढंग में कहा। "जीवन और मृत्यु की बातों से मैं अच्छी तरह परिचित हूँ," सफ़वान ने संतोष दिलाते हुए जवाब दिया।

(2)

उमैर बिन वहब ने जल्दी-जल्दी सफ़र की तैयारी की। सबसे पहले उसने तलवार पर नई धार रखवाई और उसे ज़हर में बुझा लिया। फिर थोड़ा-सा सामान साथ लिया और एक तेज़-रफ़्तार ऊँटनी पर सवार होकर उसकी दिशा मदीने की ओर मोड़ दी। वह मंज़िल पर मंज़िल तय करता हुआ चला जा रहा था। रास्ते में वह कहीं नहीं ठहरा। वह जल्द से जल्द मदीना पहुँच जाना चाहता था। बदले की भावना उसे बेचैन किए हुए थी। उसकी नज़रें बार-बार ज़हर में बुझी तलवार पर पड़तीं और उसकी आँखों में चमक-सी पैदा हो जाती। उसके होंठों पर मुस्कुराहट खेलने लगी। वह सोच रहा था :—

> "बस एक ही वार में काम तमाम— पहले ही उसकी धार क्या कम थी। ज़हर में बुझकर तो यह और क़ातिल बन गई है— इसका हलका-सा घाव भी परलोक का रास्ता दिखाने के लिए काफ़ी होगा।"

यह ख़याल आते ही उसने ऊँटनी की रफ़्तार और तेज़ कर दी।

(3)

मस्जिदे नबवी के सामने उमैर अपनी ऊँटनी से उतरा ही था कि उसका सामना हज़रत उमर (रज़ि०) से हो गया। वे उमैर के तेवर देखकर ताड़ गए कि इसकी नीयत ठीक नहीं है। मस्जिदे नबवी में जाकर उन्होंने (सल्ल०) को स्थिति से अवगत कराया।

"उमैर को अपने साथ अन्दर ले आओ।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हज़रत उमर (रज़ि०) से कहा।

हज़रत उमर (रज़ि०) उमैर को अन्दर ले आए और नबी (सल्ल०) की सेवा में पेश कर दिया। अल्लाह तआला ने अपने रसूल (सल्ल०) को वास्तविक स्थिति से पहले ही सूचित कर दिया था। नबी (सल्ल०) मुस्कुराते हुए उमैर से बोले।

"कहो उमैर—! कैसे आना हुआ?"

"बेटे की ख़ैरियत लेने आया हूँ।" उमैर ने बहाना बना दिया।

"और यह तलवार कैसी है?" नबी (सल्ल०) ने तलवार की ओर इशारा करते हुए पूछा।

"यह बेकार है?" उमैर ने बेपरवाई से जवाब दिया, "हमारी तलवारों ने बद्र के मैदान में आपका क्या बिगाड़ लिया था, जो..."

बद्र का ख़याल आते ही उसके दिल की दबी हुई चोटें जैसे उभर आई हों, उसके होंठ थर-थराने लगे, वह इससे आगे कुछ न कह सका।

"उमैर, सच बताओ! किस इरादे से आए हो?" नबी (सल्ल०) ने धैर्य के साथ फिर सवाल किया।

"अपने लड़के से मिलने आया हूँ।" उमैर सच्चाई को फिर छिपा गया।

"तुम और सफ़वान—मक्का से बाहर— उस अंधेरी रात में क्या बातें कर रहे थे?" नबी (सल्ल०) ने मुहब्बत भरे अन्दाज़ में ठहर-ठहर कर सीधा सवाल कर दिया।

उमैर इस अप्रत्याशित सवाल को सुनकर चौंक पड़ा, लेकिन अपनी हैरत को छिपाते हुए बोला—"जी—जी—!" उसका गला सूख गया। ज़बान लड़खड़ाने लगी।

"क्या सफ़वान ने यह वादा नहीं किया था कि वह तुम्हारा क़र्ज़ चुका देगा और— तुम्हारे परिवार की देख-भाल भी करेगा— अगर ज़रूरत पड़ी तो?"

नबी (सल्ल०) ने उसका राज़ खोलना शुरू कर दिया। उमैर पर मूर्छा-सी छाने लगी। उसकी ज़बान से "जी—जी—" के अलावा और कुछ न निकल सका। नबी (सल्ल०) ने कहा—"ज़हर में बुझी हुई तलवार लेकर—क्या तुम मेरी हत्या की नीयत से नहीं आए हो?"

नबी (सल्ल०) कुछ सेकण्ड के लिए चुप रहे और फिर कहने लगे, "लेकिन—उमैर—यह न भूलो कि मेरा रक्षक स्वयं अल्लाह है।"

आपके लहजे में कुछ तेज़ी थी जिसे महसूस करके उमैर ने झुर-झुरी ली। भय और लज्जा से उसकी नज़रें ज़मीन में गड़ी जा रही थीं। नबी (सल्ल०) का पाक चेहरा पैग़म्बराना जलाल से दमक रहा था। देखते ही देखते उमैर का सारा बदन थर-थराने लगा। उसका मस्तिष्क विभिन्न विचारों का घर बना हुआ था।

"सफ़वान यहाँ आने से रहा। उस रात को वहाँ अल्लाह के सिवा तीसरा कोई न था। फिर यह सारा क़िस्सा मुहम्मद को कैसे मालूम हो गया? निस्संदेह ये अल्लाह के नबी हैं!"

मस्तिष्क में इन विचारों के प्रकट होते ही उमैर के हाथ-पैर ढीले पड़ गए। वह अपने आपपर क़ाबू न रख सका। बढ़कर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पवित्र

हाथों को थाम लिया और रो-रोकर कहने लगा।

"ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! मुझे माफ़ कर दीजिए और अपनी कृपा की छत्रछाया में जगह दे दीजिए।"

हज़रत उमैर (रज़ि०) की ज़बान पर कलिमा तय्यिबा जारी हो गया। नबी (सल्ल०) सहाबा (रज़ि०) से बोले–

"लो—अपने भाई को ले जाओ, इनको क़ुरआन सिखाओ और इनके बेटे को आज़ाद कर दो।"

अजनबी

"ऐ मेरे रब—! क्या मैं यूँ ही प्यासा मर जाऊँगा।" उसने अपनी सूखी ज़बान अपने सूखे और मोटे होंठों पर फेरी और इधर-उधर नज़रें दौड़ाते हुए कहा।

हब्शी नस्ल का एक मोटा-ताज़ा नौजवान ख़ैबर की हरी-भरी ढालदार घाटी में खड़ा था। उसके चारों ओर छोटी-बड़ी झाड़ियाँ उगी हुई थीं। उसके घुँघराले काले बाल और फटे-पुराने कपड़े धूल में अटे हुए थे। जान पड़ता था कि वह लम्बी यात्रा पूरी करके आ रहा है, उसका चेहरा निढाल था। वह बार-बार अपने गले को सहला रहा था और अपने चारों तरफ़ इस तरह देख रहा था, जैसे उसे किसी चीज़ की तलाश हो। अचानक उसकी निगाह पास की झाड़ी में छिपी हुई छोटी मश्क पर पड़ी।

"पानी—पानी—!" कहता हुआ वह उसकी तरफ़ झपटा। दूसरे ही क्षण पानी से भरी हुई छोटी मश्क उसके दोनों मज़बूत हाथों में थी। वह जल्द से जल्द उसका मुँह खोलकर सारा पानी अपने सूखे गले में उंडेल लेना चाहता था। अचानक एक ख़याल बिजली की तरह उसके मस्तिष्क में दौड़ गया। उसने मश्क को मुँह से हटा लिया और फिर इधर-उधर देखने लगा।

(2)

थोड़े ही फ़ासले पर एक बड़ी झाड़ी की छाया में ऊँघता हुआ एक दूसरा हब्शी हंज़ल— आहट पाकर चौंक पड़ा। उसने गर्दन उठाई। सामने उसका एक सजातीय उसका मश्कीज़ा (छोटी मश्क) हाथों में लिए हुए खड़ा दिखाई दिया।

"चोर—!" उसने अपने दिल में सोचा और तुरन्त उठ बैठा।

वह झाड़ियों की आड़ लेता हुआ चीते की तरह धीरे-धीरे अपने शिकार की ओर बढ़ने लगा। अब दोनों के बीच केवल एक झाड़ी थी। हंज़ल छलाँग लगाकर उसे पीछे से दबोचने ही वाला था कि उस व्यक्ति की आवाज़ सुनाई दी।

"काश! इस मश्कीज़े का मालिक आ जाए तो मैं उससे अनुमति लेकर अपना सूखा हलक़ तर कर लूँ।"

हंज़ल के हाथ-पैर ढीले पड़ गए। उसके क़दम आगे न बढ़ सके। वह उसी झाड़ी में छिपा रहा। किन्तु उसका मस्तिष्क तेज़ी से काम करने लगा।

"अगर वह प्यासा है तो पानी क्यों नहीं पी लेता, उसे अनुमति लेने की क्या ज़रूरत है।"

"अब तक कोई नहीं दिखाई दिया। ओह—! मेरे मालिक! मैं क्या करूँ।" उस अजनबी की आवाज़ हंज़ल के कानों से पुन: टकराई और उसके विचारों के सिलसिले को भंग कर दिया। वह झाड़ी की ओट से फिर उसे देखने लगा।

अजनबी व्यक्ति व्याकुलता से अपनी निगाहें इधर-उधर दौड़ा रहा था। उसे मश्कीज़े के मालिक की तलाश थी। वह बार-बार अपनी सूखी ज़बान अपने ख़ुश्क होठों पर फेर रहा था।

"आख़िर ऐसा क्यों है—? किस विचार ने उसे पानी पीने से रोक दिया।" हंज़ल फिर विचारों में खो गया। "प्यास की अधिकता से वह अधमरा-सा हो रहा है, लेकिन फिर भी उसे पानी के मालिक की तलाश है। उसकी इजाज़त के बग़ैर वह उसे पी नहीं सकता—आख़िर क्यों—?"

यद्यपि हंज़ल कुरूप और काला था, लेकिन मन का मैला न था। उसका दिल साफ़-सुथरा और उज्ज्वल था। इजाज़त लेनेवाली बात उसके दिल में खटक रही थी। अजनबी के लिए वह अपने दिल में हमदर्दी महसूस करने लगा। एक बार तो उसके दिल में आया कि वह उसे पानी पीने की अनुमति दे दे, लेकिन वह रुका रहा।

अब अजनबी ने मश्कीज़ा उसकी जगह पर रख दिया, फिर भी उसकी नज़रें उसी पर गड़ी रहीं। उसने कई बार मश्कीज़े की ओर हाथ बढ़ाया, मगर फिर खींच लिया जैसे कोई परोक्ष शक्ति उसे रोक रही हो। आख़िर उसने अपनी नज़रें आसमान की ओर उठाते हुए कहा।

"ऐ अल्लाह! तू गवाह है कि मैंने ख़यानत नहीं की, क्योंकि तेरे रसूल (सल्ल०) ने ख़यानत करने से मना फ़रमाया है।"

हंज़ल अजनबी के ये शब्द सुनकर फिर चौंक पड़ा। उसने देखा कि अजनबी व्यक्ति बिना पानी पिए आगे बढ़ रहा है, लेकिन उसके क़दम उसका साथ नहीं दे रहे हैं। वह अभी थोड़ी ही दूर चला था कि चकरा कर तप्ती हुई रेत पर गिर पड़ा और बेहोश हो गया।

हंज़ल अब झाड़ी के पीछे छिपा न रह सका। वह दौड़ा और मश्कीज़ा लिए

हुए उसके पास पहुँच गया।

(3)

अजनबी को होश आ चुका था। हंज़ल और वह दोनों एक छायादार पेड़ के नीचे ताज़ा-ताज़ा खजूरें खा रहे थे।

"यह लो—! देखो कितनी रस-भरी है।" हंज़ल ने एक बड़ी-सी रसीली खजूर की तरफ़ इशारा किया।

"शुक्रिया—!" अजनबी ने खजूर उठा ली। मुँह में रखते हुए बोला "सच में बड़ी स्वादिष्ट है।"

"अच्छा यह बताओ—! तुम हो कौन?" हंज़ल अपनी जिज्ञासा पर क़ाबू न पा सका और सवाल कर ही दिया।

"मैं क़ुरैश का एक हब्शी ग़ुलाम हूँ।" अजनबी ने आख़िरी खजूर मुँह में रखते हुए जवाब दिया।

"फिर तुम यहाँ कैसे आ गए?" हंज़ल ने और अधिक आश्चर्य के साथ पूछा।

"अपने मालिक के अत्याचारों से तंग आकर मैं भाग आया हूँ।" अजनबी ने हंज़ल के चेहरे को ग़ौर से देखते हुए जवाब दिया।" मक्का से निकल कर रेगिस्तान में भटक रहा हूँ और छिपता-छिपाता यहाँ तक पहुँचा हूँ।"

"अब कहाँ का इरादा है?"

"मदीना जाना चाहता हूँ।"

हंज़ल ख़ामोश हो गया। वह कुछ सोचने लगा। ऐसा मालूम होता था कि वह अजनबी से कुछ और पूछना चाहता है, लेकिन असल बात ज़ुबान पर न ला सका। इधर खाने-पीने के बाद अजनबी को नींद के झोंके से आने लगे।

"थोड़ी देर आराम कर लो। थकान दूर हो जाए तब चले जाना।" हंज़ल ने अजनबी से निवेदन किया।

अजनबी वहीं ज़मीन पर लेट गया। थोड़ी देर कमर सीधी करने के बाद वह उठ बैठा और क़रीब बैठे हुए हंज़ल से बोला—

"अच्छा दोस्त— अब इजाज़त दो, देर हो रही है।"

"एक बात पूछूँ, बताओगे?" हंज़ल उस अजनबी की बात को काटते हुए बोला,

जैसे वह अपने दिल में चुभे हुए काँटे को निकाल ही डालना चाहता हो।

"पूछो—क्या पूछना चाहते हो—।" अजनबी ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया "मैं ज़रूर बताऊँगा।"

अजनबी के कोमल स्वर और मुस्कुराहट ने हंज़ल की हिम्मत बढ़ा दी।

"उस वक़्त तुम अत्यधिक प्यासे थे। पानी से भरा हुआ मश्कीज़ा तुम्हारे हाथों में था, फिर भी तुमने पानी नहीं पिया—आख़िर क्यों?"

"पानी का मालिक उस वक़्त सामने मौजूद न था, उसकी इजाज़त के बग़ैर पानी पीना ख़यानत थी, जिससे हमें मना किया गया है।" अजनबी ने शांतिपूर्ण ढँग से हंज़ल को समझा दिया।

"वह है कौन जिसने तुम्हें ख़यानत करने से मना किया है?" हंज़ल की बेचैनी ने उसे फिर सवाल करने पर मजबूर कर दिया।

"वे हमारे सजातीय बिलाल (रज़ि०) के मालिक और स्वामी मुहम्मद (सल्ल०) हैं। जिनपर मैं भी ईमान ला चुका हूँ।" अजनबी के जवाब में प्यार भरी तड़प महसूस हो रही थी।

"तुम भी ईमान ले आए?" हंज़ल हैरत से अजनबी का मुँह तकने लगा।

"हाँ—मैं भी ईमान ले आया हूँ।" अजनबी ने बहुत ही नर्म लहजे में समझाना शुरू किया "वह अल्लाह के आख़िरी नबी हैं। अल्लाह ने उनपर अपनी वाणी (क़ुरआन) उतारी है। उन्हें अपनी मर्ज़ी बताई है। वे हमें बुरे काम करने से मना करते हैं। प्यार-मुहब्बत का पाठ पढ़ाते हैं। मैं उन्हीं की सेवा में मदीना जा रहा हूँ।"

हंज़ल कुछ और पूछना चाहता था कि ठीक उसी समय ख़ैबर के प्रसिद्ध दुर्ग क़मूस का फाटक खुला और यहूदियों का एक सशस्त्र दल बाहर आता दिखाई दिया। उसे देखकर अजनबी ठिठका और यह कहता हुआ एक बरसाती नाले में कूद गया।

"अच्छा, विदा— क़िस्मत ने मिलाया— तो फिर मिलेंगे।"

(4)

दिन महीनों में और महीने वर्षों में बदलते रहे। अजनबी से मुलाक़ात के बाद हंज़ल के दिल में जो कसक पैदा हो गई थी, वह बजाए कम होने के दिन-प्रतिदिन

बढ़ती ही रही। बकरियों के रेवड़ को चरता हुआ छोड़कर वह झाड़ी की छाया में बैठा घण्टों सोचता रहता।

"बिलाल का आक़ा अवश्य ही कोई रहम दिल आदमी है।" सोचते-सोचते अचानक उसकी ज़बान से निकल गया और उसी वक़्त उसकी नज़र उस बकरी पर पड़ी जो रेवड़ से अलग होकर दूसरी तरफ़ जा रही थी। उसने उसे डाँटा। बकरी फिर अपने रेवड़ में आ गई और उधर हंज़ल भी अपने विचारों में खो गए।

"एक मेरा आक़ा है, जिसकी ख़िदमत करते और बक़रियाँ चराते मुझे बर्षों गुज़र गए, उसकी सेवा का प्रतिफल मुझे क्या मिला – घृणा, अपमान, झिड़कियाँ और गालियाँ। यह घृणा नहीं तो और क्या है कि मेरा अच्छा भला नाम बदल कर हंज़ल (इंद्रायन का कड़ुआ फल) रख दिया।"

अपने मालिक का ख़याल आते ही हंज़ल का मुँह बिगड़ गया, लेकिन हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को देखने और उनसे मिलने का शौक़ बढ़ता जा रहा था। उसे फिर क़ुरैश का भागा हुआ ग़ुलाम याद आ गया। वह कितनी चाहत और लगन के साथ मदीने की तरफ़ भागा जा रहा था, जैसे कोई प्यासा ठण्डे पानी के स्रोत की तरफ़ जा रहा हो।

"मैं भी जाऊँगा— मुहम्मद (सल्ल०) के पास ज़रूर जाऊँगा।"

ये वाक्य अनायास उसकी ज़बान से निकल गए। वह घबरा कर इधर-उधर देखने लगा, कहीं कोई सुन तो नहीं रहा है।

दिन समाप्त हो रहा था और आसमान में अँधेरा छाता जा रहा था। हंज़ल रेवड़ हाँकता हुआ क़िले की ओर रवाना हो गया।

(5)

एक दिन हंज़ल ने चरागाह के पास लहराते हुए झण्डे देखे। फिर क़िले के यहूदियों का एक सशस्त्र दल बाहर आता दिखाई दिया, जब यह दल उसके क़रीब से गुज़रा तो उसने एक सवार से पूछा— "आज हथियार क्यों बाँध रखे हैं– सब ठीक-ठाक तो है?"

"हम उस व्यक्ति से जंग करने की तैयारी कर रहे हैं जो अपने आपको नबी कहता है।" सवार ने घोड़ा रोककर जवाब दिया।

"क्या मुहम्मद (सल्ल०) से जंग करने का इरादा है?" हंज़ल की ज़बान से निकल गया।

"हाँ—!" कहता हुआ सवार आगे बढ़ गया।

देखते ही देखते उनके घोड़े हवा से बातें करने लगे। धूल उड़ने की वजह से वे जल्द ही नज़रों से ओझल हो गए। हंज़ल ने नफ़रत के साथ उनकी तरफ़ थूक दिया और फिर घृणास्पद शब्दों में बोला—"पर निकलते हैं तो चींटी की मौत आती है।"

(6)

कई महीने और गुज़र गए। एक रात क़िले में यह ख़बर फैलने लगी कि मदीनावालों ने हमला कर दिया है। मुहम्मद (सल्ल०) की फ़ौज क़िले के सामने मैदान में पड़ी है। सब हैरान थे कि दो सौ मील लम्बी यात्रा इतनी जल्दी तय करके ये लोग यहाँ कैसे आ गए और फिर किसी को कानो-कान ख़बर तक न हो सकी! जब मुसलमान बिलकुल सिर पर आ गए तब उन्हें पता चला। कुछ के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। कुछ जंगी तैयारियों में व्यस्त हो गए। सिर्फ़ एक हंज़ल ऐसा था जिसके चेहरे से ख़ुशी टपक रही थी। न जाने किस बेचैनी के साथ उसने रात गुज़ारी। सुबह तड़के ही उसने बकरियों को आवाज़ दी। वे फ़ौरन उसकी आवाज़ पर इकट्ठा हो गईं। उसने मश्कीज़ा अपने कंधे से लटकाया और लाठी हाथ में लेकर बकरियों को हाँकता हुआ क़िले से बाहर निकल आया। सड़क के क़रीब पहुँचकर वह रुक गया। उसने इधर-उधर नज़र डाली। हर दिन की तरह हर तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था— लेकिन आज का सन्नाटा किसी आनेवाले तूफ़ान का पता दे रहा था। हंज़ल का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

"मैं वह प्यासा हूँ, मेरे पास कुँआ आता है।" हंज़ल ख़ुशी से झूम उठा "अब मैं प्यासा नहीं रह सकता। मैं मुहम्मद के पास जाऊँगा— ज़रूर जाऊँगा।"

उसने अपना रेवड़ उस दिशा में हाँक दिया, जिधर मदीने की आने वाली फ़ौज के झण्डे नज़र आ रहे थे। रेवड़ के पीछे-पीछे वह ख़ुद चलता रहा। अब वह एक टीले का लम्बा चक्कर काटकर नीचे उतर रहा था, अचानक उसे अजनबी की वह बात याद आ गई।

> "ऐ अल्लाह! मैंने ख़यानत नहीं की, मालिक की इजाज़त के बिना पानी नहीं पिया।"

इस विचार के आते ही उसने बकरियों के रेवड़ पर एक नज़र डाली।

"यह तो बहुत बड़ी ख़यानत है, मैं अपने मालिक की सारी बकरियाँ लिए जा

रहा हूँ।"

उसके बढ़ते हुए क़दम रुक गए। उसने पलटकर पीछे देखा।

"ओह—! मैं तो बहुत दूर निकल आया हूँ।"

फिर अचानक उसे ख़याल आया।

"अगर मुहम्मद (सल्ल०) ने यह बकरियाँ वापस करा दीं तो मैं समझूँगा कि वे सच्चे नबी हैं और ये मक्कार यहूदी झूठे हैं, लेकिन अगर उन्होंने वापस न कराईं तो यहूदी हक़ पर चलनेवाले होंगे और मैं वापस आ जाऊँगा।"

हंज़ल के क़दम फिर आगे बढ़ने लगे। वह बढ़ता रहा, बढ़ता रहा। यहाँ तक कि छावनी के पास पहुँच गया। अब हर तरफ़ अंधेरा छा चुका था। सेना के चारों तरफ़ सिपाही सतर्कता के साथ पहरा दे रहे थे।

"तुम कौन हो— कहाँ जाना चाहते हो— बकरियों को रोक दो!"

हंज़ल ने अपने आपको एक नेज़े के सामने पाया।

"मैं मुहम्मद (सल्ल०) से मिलना चाहता हूँ।" हंज़ल ने बेझिझक जवाब दिया। नेज़ाधारी मुजाहिद निकट आ चुका था। दोनों की नज़रें चार हुईं। एक ने नेज़ा फेंक दिया और दूसरे ने बाहें फैला दीं। एक साथ दोनों की ज़बान से निकला "अरे—तुम—!"

हंज़ल और अजनबी दोनों एक-दूसरे के गले मिल गए।

(7)

हंज़ल की नज़रें जैसे ही नबी (सल्ल०) के पाक चेहरे पर पड़ीं वह चकित रह गया। उसके सामने एक ऐसा चेहरा था जिससे कोमलता, स्नेह, श्रेष्ठता, गम्भीरता और आकर्षण फूट रहा था। उसका दिल स्वतः आप (सल्ल०) की ओर खिंचने लगा। रास्ते में उसने बहुत से प्रश्न सोच रखे थे, लेकिन नबी (सल्ल०) का सामना होते ही वह सब कुछ भूल गया, फिर भी उसने हिम्मत करके पूछ ही लिया।

"आप का पैग़ाम क्या है और आप किस बात की दावत देते हैं?"

"मेरा पैग़ाम इस्लाम है।" नबी (सल्ल०) ने समझाना शुरू किया "मेरी दावत यह है कि अल्लाह के सिवा कोई इबादत के योग्य नहीं, हम सब आदम (अलै०) की औलाद हैं। हम में सबसे अधिक इज़्ज़तवाला वह है, जो सबसे अधिक अल्लाह से डरनेवाला हो।"

"अगर मैं इन बातों पर ईमान ले आऊँ तो मेरे लिए इसका क्या बदला है?" हंज़ल ने फिर प्रश्न किया।

"जन्नत—!"

"हे अल्लाह के रसूल! मेरे पास ये बकरियाँ अमानत हैं, इनका क्या करूँ?" उसने दोबारा प्रश्न किया।

"इन्हें अपने पास से हाँक दो! अल्लाह इन्हें इनके मालिक के पास पहुँचा देगा।"

इस जवाब से काला हंज़ल झूम उठा। उसका दिल गवाही देने लगा।

"निस्सन्देह मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के सच्चे नबी हैं और ये मक्कार यहूदी झूठे हैं।"

उसका पूरा शरीर अमानत के भार से काँपने लगा। हर्ष और आनन्द की अधिकता और श्रद्धा से परिपूर्ण होकर उसने काँपती हुई आवाज़ से अपने ईमान लाने की घोषणा की— "अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाह व अश्हदु अन-न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुह," (मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं और गवाही देता हूँ कि मुहम्मद उसके बन्दे और रसूल हैं।)

(8)

सुबह होते ही मुसलमानों और यहूदियों में जंग छिड़ गई। दोनों फ़ौजें एक-दूसरे से गुथ गईं। वह काला ग़ुलाम जो कुरूप था, जिसे यहूदी हंज़ल कहकर पुकारते थे और जिसके पसीने से बदबू आती थी, मुसलमानों के साथ कँधे से कँधा मिलाकर यहूदियों से जंग कर रहा था।

जब मुसलमानों को विजय प्राप्त हुई और शहीदों की लाशें ला-लाकर एक तम्बू में रखी जाने लगीं तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) तम्बू में पधारे। आप (सल्ल०) ने देखते ही उस हब्शी की लाश को पहचान लिया, जो ख़ून में लत-पत दूसरी लाशों के बीच रखी हुई थी। नबी (सल्ल०) ख़ेमे से निकलकर सहाबा किराम (रज़ि०) के पास गए और फ़रमाया— "अल्लाह ने इस ग़ुलाम को इज़्ज़त बख़्शी और नेकी की तरफ़ बढ़ाया। इसके सिरहाने दो ख़ूबसूरत आँखोंवाली हूरें खड़ी हैं। यद्यपि इसने अल्लाह को एक भी सज्दा नहीं किया।"

हंज़ल (रज़ि०) एक वक़्त की भी नमाज़ न पढ़ सके थे। उनके इस्लाम में दाख़िल होते ही जिहाद शुरू हो गया था और वे उसमें शामिल होकर शहादत का जाम (प्याला)पी चुके थे।

बिना करदंद ख़ुश रस्मे ब ख़ाको ख़ून ग़लतीदन
ख़ुदा रहमत कुनद ईं आशिक़ाने पाक तीनत रा
(अल्लाह तआला इन पाक दिल आशिक़ों पर रहमत की वर्षा करे जिन्होंने अल्लाह की राह में अपनी गर्दन कटा देने की बेहतरीन परम्परा की नींव रखी)

हिजरत

"इन साबियों (बेदीनों) ने तो हमारे नाक में दम कर रखा है।" क़ुरैश के सरदारों में से एक ने बातचीत का सिलसिला शुरू किया।

"हमारी सोच ग़लत साबित हुई।" दूसरे ने कहा "जितनी हम उनपर सख़्ती और मार-पीट करते हैं उतनी ही उनकी दृढ़ता में और अभिवृद्धि होती जा रही है।"

"ऐसा मालूम होता है कि इन्हें मुहम्मद (सल्ल०) और उनके दीन (धर्म) से इश्क़ हो गया है।"

तीसरा बोला "जभी तो माल-दौलत, घर-बार और वतन को छोड़कर मौक़ा पाते ही यसरिब की तरफ़ भाग खड़े होते हैं।" चौथे ने स्थिति को और स्पष्ट किया।

"इसी मामले पर ग़ौर करने के लिए तो हम यहाँ जमा हुए हैं कि आख़िर इनसे कैसे निपटा जाए?" एक सरदार बोला।

एक बूढ़े नज्दी सरदार ने (जो अब तक सिर झुकाए हुए सबकी बातें सुन रहा था।) मौजूद लोगों पर एक नज़र डाली और बोला, "मुझे तो एक बहुत बड़े ख़तरे की गन्ध आ रही है।"

"वह क्या—?" कई आवाज़ें एक साथ आईं और सब के सब उस बूढ़े सरदार की ओर ध्यानपूर्वक देखने लगे।

"ये साबी एक-एक करके यसरिब में जमा हो रहे हैं और यसरिबवाले भी उनके साथ भाईचारे और मुहब्बत का व्यवहार कर रहे हैं।"

"सुनने में यही आ रहा है—शैख़!" एक सरदार बात काटकर बोल उठा।

"कहीं ऐसा न हो कि एक दिन ये सब मिलकर हम पर हमला कर बैठें!" बूढ़े सरदार ने चिन्तित स्वर में बात पूरी की।

"आपकी आशंका सत्य है—ऐ शैख़!" कई सरदार एक साथ बोल उठे।

"यह भी हो सकता है कि शाम (सीरिया) जानेवाले रास्ते हमारे लिए बन्द कर दिए जाएँ।" बूढ़े सरदार ने और बड़े ख़तरों पर प्रकाश डाला।

"फिर तो हमारा व्यापार ही ठप हो जाएगा।" एक तरफ़ से आवाज़ आई।

"और यह हमारे लिए आर्थिक मौत होगी।" एक दूसरी आवाज़ उठी।

"इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल०) को रास्ते से हटा दिया जाए, यही सारे फ़साद की जड़ है।" अबू जह्ल जो अब तक चुप बैठा था, बोल उठा।

"बात तो सच है— लेकिन यह काम किस तरह किया जाए, इसी पर ग़ौर करना है!" बूढ़े नज्दी ने असल मसले की ओर ध्यान आकर्षित किया।

"इस सिलसिले में हम सब अपनी-अपनी रायें पेश करें।" अबू जह्ल ने जवाब दिया।

"अगर आप उचित समझें तो मेरी राय यह है कि मुहम्मद के हाथ-पैर ज़ंजीर से जकड़ दिए जाएँ और फिर उसे एक कोठरी में क़ैद कर दिया जाए, जहाँ वह ज़ुहैर और नाबिग़ा जैसे कवियों की तरह घुट-घुटकर मर जाए।" एक सरदार ने सुझाव दिया।

"नहीं-नहीं, कभी ऐसा न करना।" बूढ़ा नज्दी तुरन्त बोल उठा, "यह ख़बर छिपनेवाली नहीं है। सूचना पाते ही उसके साथी हमपर हमला करके उसे छुड़ा ले जाएँगे।"

"मेरी राय यह है कि उसे पकड़कर किसी दूरस्थ स्थान पर छोड़ आया जाए। वहाँ वह मरे या जिए, हमारी बला से।" दूसरे सरदार ने अपना सुझाव रखा।

"नहीं यह राय भी ठीक नहीं है।" बूढ़ा नज्दी फिर बोल उठा, "क्या तुम भूल गए कि उसकी बातें कितनी मीठी और दिल लुभावनी होती हैं। वह जहाँ भी रहेगा लोगों के दिल मोह लेगा। लोग उसके अनुयायी हो जाएँगे। फिर वह तुमपर चढ़ाई करके तुम्हारी इज़्ज़त और सरदारी सब छीन लेगा।"

तात्पर्य यह कि इसी तरह सब अपनी-अपनी राय देते रहे और आपस में उलझते रहे, मगर कोई फ़ैसला न हो सका। अन्ततः अबू जह्ल जो अब तक यह सारा तमाशा देख रहा था, बोला "अगर आप लोग इजाज़त दें तो मैं भी एक सुझाव पेश करूँ, शायद वह व्यावहारिक हो।"

"ज़रूर—अबुल हकम (अबू जह्ल की उपाधि) ज़रूर पेश कीजिए, हम प्रतीक्षक हैं।" सब एक स्वर में बोल उठे।

अबू जह्ल खड़ा हो गया और उपस्थित लोगों पर एक विहंगम दृष्टि डालते

हुए बोला। ''मेरा विचार है कि हर क़बीले से एक-एक बहादुर नौजवान चुन लिया जाए। हम सब इकट्ठा होकर कल रात मुहम्मद (सल्ल०) के घर का घेराव कर लें। सुबह के वक़्त जब वह बाहर निकले तो हमारी तलवारें एक साथ उस पर टूट पड़ें और उसकी तिक्का-बोटी कर दें।''

यह सुनकर सब ख़ुशी से उछल पड़े और बूढ़ा नज्दी मुस्कुराते हुए बोला—

''अबुल हकम तुम्हारी राय बहुत मुनासिब है।''

अबू जहल ने अपने सुझाव के लाभप्रद पहलू पर और अधिक रोशनी डालते हुए कहा, ''एक साथ हमला करने से यह लाभ होगा कि बनू हाशिम अकेले समस्त क़बीलों से बदला न ले सकेंगे और ज़्यादा-से-ज़्यादा यह हो सकता है कि हमें जान की क़ीमत अदा करनी पड़े।''

सभी सरदार अबू जहल के सुझाव से सहमत हो गए और उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए उठ खड़े हुए।

(2)

इधर तो मक्कावाले क़त्ल की योजनाएँ बना रहे थे और उधर अल्लाह की मर्ज़ी उनकी बेबसी और बेचारगी पर मुस्कुरा रही थी। दूसरे ही दिन दोपहर से पहले अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल०) को मक्की सरदारों के नापाक इरादों से अवगत करा दिया और साथ ही साथ यह हुक्म भी दे दिया कि—

> ''आज रात को आप अपने बिस्तर पर न सोएँ बल्कि मक्का से हिजरत कर जाएँ।''

हज़रत जिबरील (अलै०) के वापस जाते ही रसूल (सल्ल०) सीधे अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के मकान की ओर चल दिए। आप (सल्ल०) ने दरवाज़ा खटखटाया। सिद्दीक़ अकबर (रज़ि०) तत्काल बाहर आ गए और नबी (सल्ल०) को दोपहर के वक़्त दरवाज़े पर खड़ा देखकर हैरत से पूछा:—

''कोई ख़ास बात है, ऐ अल्लाह के रसूल! इस वक़्त आप कैसे तशरीफ़ लाए?''

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) बग़ैर जवाब दिए घर के अन्दर चले गए। फिर अबू बक्र (रज़ि०) से गोपनीय ढँग से कहा, ''लोगों को यहाँ से हटा दो, कुछ बात करनी है।''

''ऐ अल्लाह के रसूल! यहाँ सिर्फ़ मेरी दो लड़कियाँ हैं और कोई दूसरा नहीं

है।" अबू बक्र (रज़ि०) ने जवाब दिया।

"मुझे हिजरत का हुक्म मिला है— आज रात ही मैं रवाना हो रहा हूँ।" रसूल (सल्ल०) ने धीमें स्वर में बताया।

"ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान हों। क्या मुझे सफ़र का साथी होने का सौभाग्य प्राप्त न होगा?" अबू बक्र (रज़ि०) ने बड़ी उत्सुकता के साथ निवेदन किया।

"हाँ! तुम साथ चलोगे।" हुज़ूर (सल्ल०) ने कहा।

यह सुनते ही प्रसन्नता के भावावेश में अबू बक्र (रज़ि०) की आँखों से आँसू निकल पड़े। उन्होंने अर्ज़ किया—

> "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने पहले ही से सफ़र के लिए दो ऊँटनियों का प्रबन्ध कर रखा है। ये चार माह से बबूल की पत्तियाँ खा-खाकर तैयार हो रही हैं। इनमें से एक आप ले लीजिए।"

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) किसी का एहसान कब गवारा कर सकते थे। कहा— "अच्छा— इसकी क़ीमत क्या होगी।"

"मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान हों, क़ीमत का क्या सवाल?" अबू बक्र (रज़ि०) ने प्रेम-भाव में जवाब दिया।

"मैं क़ीमत दिए बग़ैर इसे नहीं लूँगा।" नबी (सल्ल०) ने निर्णयात्मक रूप में जवाब दिया।

"जो आप की ख़ुशी, वही मेरी ख़ुशी!" अबू बक्र (रज़ि०) ने मजबूरन क़बूल कर लिया।

इस बातचीत के बाद ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) वापस चले गए। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) सफ़र का सामान और नाश्ता तैयार कराने लगे। इससे फ़ुरसत पाकर आपने अपने बेटे अब्दुल्लाह (रज़ि०) और ग़ुलाम आमिर (रज़ि०) इब्ने फ़ुहैरा को सफ़र से सम्बन्धित ज़रूरी हिदायतें दीं।

(3)

"अली—! आज तुम मेरे बिस्तर पर सो जाना।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) मुहब्बत भरे अन्दाज़ में हज़रत अली (रज़ि०) से बोले।

"मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान हों— ऐ अल्लाह के रसूल! आप कहाँ तशरीफ़

ले जाएँगे।?" हज़रत अली (रज़ि०) ने हैरत से पूछा।

"मुझको हिजरत का हुक्म मिल चुका है। आज ही रात मुझे मदीना के लिए रवाना हो जाना है।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने ठहर-ठहर कर बताया।

"क्या मुझे साथ चलने का सौभाग्य प्राप्त न होगा?" अली (रज़ि०) ने उत्सुकतापूर्ण स्वर में पूछा।

"तुम जानते हो कि कुरैश की बहुत-सी अमानतें मेरे पास रखी हुई हैं।" नबी (सल्ल०) ने तसल्ली देते हुए समझाना शुरू किया– "इनकी वापसी ज़रूरी है और यह काम तुम्हारे सिवा कोई और नहीं कर सकता, इसलिए पहले यह काम पूरा करना है, फ़िर जब स्थिति अनुकूल हो जाए तो तुम चले आना।"

"जैसी आप की मर्ज़ी।" हज़रत अली (रज़ि०) ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

"मैं नहीं चाहता कि मेरे चले जाने के बाद लोग मुझे विश्वासघाती और बेईमान कहें।" नबी (सल्ल०) ने हज़रत अली (रज़ि०) के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "इसलिए अमानतों क़ी वापसी में किसी को शिकायत का अवसर न मिलने पाए।"

"अगर अल्लाह ने चाहा तो ऐसा ही होगा— ऐ अल्लाह के रसूल!" अली (रज़ि०) ने ज़िम्मेदारी के महत्व को महसूस करते हुए जवाब दिया।

"यह समझ लो कि मेरी हत्या करने के लिए कुरैश घर का घेराव किए हुए हैं।" नबी (सल्ल०) ने रहस्य प्रकट करने के अन्दाज़ में धीमे-धीमे स्वर में कहा, "लेकिन तुम कदापि न डरना, अल्लाह तुम्हारा रक्षक है। मेरी चादर ओढ़कर बेखटके सो जाओ। थोड़ी रात बीतने पर मेरा रब मुझे यहाँ से निकाल ले जाएगा।"

फिर यही हुआ। जब रात ज़्यादा गुज़र गई तो कुदरत ने घेराव करनेवालों को बेसुध कर दिया। नबी (सल्ल०) उनको सोता छोड़कर बाहर तशरीफ़ ले आए। चारो तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था। सारा मक्का अंधकार की काली चादर ओढ़े सो रहा था। आप (सल्ल०) की नज़र ख़ाना-ए-काबा पर पड़ी। आँखों में आँसू तैरने लगे। आप (सल्ल०) ने आबादी पर एक विहंगम दृष्टि डाली और दुखभरे स्वर में कहा, "ऐ मक्का— तू मुझे पूरी दुनिया से अधिक प्रिय है, लेकिन क्या करूँ, तेरे बेटे मुझे यहाँ रहने ही नहीं देते।"

आप (सल्ल०) के क़दम हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के मकान की ओर उठने लगे। सफ़र का साथी पहले ही से बेचैनी के साथ प्रतीक्षा कर रहा था। थोड़ा-सा सामान और सत्तू का एक थैला लेकर साथ हो लिया। उस अंधेरी रात में दो उज्ज्वल परछाइयाँ दक्षिण की ओर बढ़ने लगीं। मक्का से लगभग तीन मील की दूरी पर

सौर नामक पहाड़ है। यहाँ पहुँचकर आपने अपना पहला पड़ाव डाला। इसका रास्ता अत्यन्त पथरीला और नुकीले पत्थरवाला था और फिर उस पर अंधेरा। परन्तु किसी न किसी तरह उसपर आप चढ़े और एक गुफा में उतरकर उसमें ठहरे। यही गुफा इतिहास में 'ग़ारे सौर' (सौर नामक गुफा) कहलाई।

(4)

सुबह प्रकट हुई, घेरा डालनेवाले जाग चुके थे और किसी के प्रतीक्षक थे। जब प्रतीक्षा करते-करते काफ़ी देर हो गई और मकान से कोई भी बाहर न निकला तो उनमें से एक ने दीवार के छेद से अन्दर झाँका।

"अरे यह बिस्तर से उठनेवाला कौन है—?" झाँकनेवाले की ज़बान से अचानक निकला। यह सुनते ही दो-तीन साथी और झाँकने लगे। "यह मुहम्मद तो नहीं है!" दूसरा चिल्ला उठा।

"यह तो अबू तालिब का बेटा अली है।" तीसरे ने पहचान कर कहा।

"मुहम्मद कहाँ ग़ायब हो गए।" कई ज़बानें बोल उठीं।

सबके सब हैरान और परेशान थे। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि यह हो क्या गया। अबू जहल ग़ुस्से में पागल हुआ जा रहा था। "यह अली मुहम्मद के बिस्तर पर क्यों सोया और मुहम्मद कहाँ है?" उसने दाँत पीसते हुए कहा— "ज़रूर यह कोई षड्यन्त्र है!"

ग़ुस्से में पागल-से होकर सब अन्दर घुस गए और अली (रज़ि०) को अपने क़रीब खींचते हुए पूछा, "तेरा साथी कहाँ है?"

"मुझे क्या पता, मैं तो सो रहा था।" अली (रज़ि०) ने बेपरवाई के साथ जवाब दिया, "तुम तो पहरा दे रहे थे, तुम जानो!"

इस कटाक्ष पर घेरा डालनेवाले तिलमिला उठे। 'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे' कहावत के मुताबिक़ हज़रत अली (रज़ि०) पर वे सब टूट पड़े और उन्हें लात-घूँसे मारने लगे। फिर उनको खींचते हुए ख़ान-ए-काबा तक ले गए और वहीं क़ैद कर दिया, लेकिन थोड़ी देर बाद उन्होंने कुछ सोचकर उनको छोड़ दिया। लोगों ने मुहम्मद (सल्ल०) की तलाश शुरू कर दी। उधर अबू जहल कुछ साथियों को लेकर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के मकान पर पहुँचा। कुण्डी खटखटाई। हज़रत अस्मा (रज़ि०) बाहर निकल कर आईं। दुश्मनों उनसे पूछा— "तेरा बाप कहाँ है?"

"मुझे क्या मालूम कहाँ हैं।" हज़रत अस्मा (रज़ि०) ने निडरता से जवाब दिया।

हज़रत अली (रज़ि०) से मिलता-जुलता जवाब पाकर अबू जह्ल समझ गया कि यह सब मिली भगत है। वह ग़ुस्से में आपे से बाहर हो गया और पूरी ताक़त से हज़रत अस्मा (रज़ि०) के मुँह पर ऐसा तमाचा मारा कि उनके कान की बाली टूट कर गिर गई।

उन लोगों को अब विश्वास हो गया कि अबू बक्र (रज़ि०) भी अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) के साथ गए हैं। उन्होंने बिना देर किए उन दोनों की तलाश शुरू कर दी और साथ ही मुहम्मद (सल्ल०) को पकड़कर ले आनेवाले को सौ ऊँटों का पुरस्कार देने का ऐलान भी कर दिया। पैरों के निशान देखकर ढूँढ़नेवालों को बुलाया गया। वे निशानों को देखते हुए मक्का से भी बाहर निकल गए और फिर दक्षिण दिशा के पहाड़ सौर की ओर चलने लगे। क़ुरैश हैरान थे कि मदीने का रास्ता तो उत्तर की ओर है, वे दक्षिण की ओर क्यों गए होंगे, लेकिन क़ुरैश निशान देखनेवालों के पीछे-पीछे चलते रहे। यहाँ तक कि सौर पहाड़ पर चढ़ने लगे और फिर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गुफा के निकट पहुँच गए। मगर यहाँ आकर वे मायूस हो गए, क्योंकि उससे आगे पैरों के निशान न थे।

विवश होकर वे सब पहाड़ी पर फैल गए और आप (सल्ल०) को तलाश करने लगे। उनकी आवाज़ें और पैरों की चाप गुफा के अन्दर साफ़ सुनाई दे रही थी। हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) दम साधे हुए बैठे थे और उनकी नज़रें अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पर जमी हुई थीं, जैसे वे आप (सल्ल०) को अपने दिल में छिपा लेना चाहते हों। रसूल (सल्ल०) ने हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) की इस दिली बेचैनी को महसूस कर लिया और यह कह कर उनको सन्तोष दिलाया, "ग़म न करो अल्लाह हमारे साथ है।"

इतने में एक क़ुरैशी गुफा के मुँह पर आ गया। उसकी टाँगे गुफा के अन्दर से साफ़ नज़र आ रही थीं। अबू बक्र (रज़ि०) का दिल तेज़ी से धड़कने लगा, लेकिन वह बग़ैर अन्दर झाँके हुए तुरन्त पलट पड़ा। उसके चेहरे पर मायूसी और थकन के चिह्न झलक रहे थे। उसके साथियों ने उससे पूछा—

"क्या हुआ— तुमने ग़ार (गुफा) के अन्दर क्यों नहीं झाँका?"

"गुफा के मुँह पर तो शायद मुहम्मद की पैदाइश से भी पहले के मकड़ी के जाले फैले हुए हैं।" उसने जवाब दिया "इसके अलावा उसके मुँह पर कबूतरी ने अण्डे दे रखे हैं और फिर कीकर के एक पेड़ ने उसका रास्ता अलग रोक रखा है। ये सारे चिह्न बताते हैं कि उसके अन्दर किसी ने भी प्रवेश नहीं किया।"

वे बिलकुल निराश हो चुके थे, लेकिन सौ ऊँटों का पुरस्कार उन्हें तलाश करने

पर मजबूर कर रहा था। अन्ततः थक-हारकर सब के सब अपना मुँह लटकाए हुए घरों को वापस हो गए।

(5)

प्रतिदिन शाम के समय अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) के बेटे हज़रत अब्दुल्लाह गुफा में आते और क़ुरैश की दिन भर की ख़बरें पहुँचा जाते थे। उनके साथ उनकी बहन हज़रत अस्मा (रज़ि०) भी होती थीं, जो अल्लाह के दोनों प्यारे मेहमानों के लिए खाना पका कर लाती थीं और जब थोड़ा अंधेरा हो जाता तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के ग़ुलाम आमिर बिन फ़ुहैरा (रज़ि०) बकरियों का रेवड़ लिए हुए ग़ार के मुँह पर पहुँच जाते और दूध दूह कर दोनों बुज़ुर्गों को पिला देते। उसके बाद रेवड़ को लेकर अब्दुल्लाह (रज़ि०) और उनकी बहन के पैरों के निशानों पर से चलते हुए घर वापस आ जाते, ताकि वे निशान मिट जाएँ और किसी को पता न चल सके कि कोई इधर आया भी था।

इसी तरह पूरे दो दिन गुज़र गए। तीसरे दिन शाम को पिछले दिनों की तरह जब हज़रत अब्दुलाह (रज़ि०) आए तो उन्होंने ख़बर दी–

> ''आम लोगों में पहले की तरह भाग-दौड़ नहीं है, वे आप लोगों को तलाश करते-करते थक चुके हैं, बल्कि मायूस होकर बैठ गए हैं।''

''फिर ऐसा करो कि कल शाम को वे दोनों ऊँटनियाँ यहाँ ले आओ और अब्दुल्लाह बिन अरक़त को भी साथ लेते आना। उससे मेरी बातचीत हो चुकी है।'' हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने बेटे को समझा दिया।

अगले दिन योजना के मुताबिक़ सभी लोग पहुँच गए। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अबू बक्र सिद्दीक़ के साथ ग़ार (गुफा) से बाहर निकले।

''ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान हों, इस ऊँटनी पर सवार हो जाइए।'' हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने सबसे अच्छी ऊँटनी पेश करते हुए निवेदन किया।

''मैं उस ऊँटनी पर सवार होऊँगा, जो मेरी है।'' नबी (सल्ल०) ने कहा।

''यही आप (सल्ल०) की है, ऐ अल्लाह के रसूल!'' हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने जवाब दिया।

''इसकी क्या क़ीमत है?''

अबू बक्र (रज़ि०) ने जब क़ीमत बता दी तो नबी (सल्ल०) उसपर सवार हो

गए। आप (सल्ल०) के पीछे अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) बैठ गए। दूसरी पर अब्दुल्लाह इब्ने अरक़त और उसके पीछे आमिर (रज़ि०) बिन फ़ुहैरा सवार हो गए। इस तरह यह छोटा-सा लेकिन मुबारक काफ़िला रात के अंधेरे में आम रास्ते से हटकर समुद्रतट के किनारे-किनारे यसरिब की तरफ़ रवाना हो गया।

(6)

क़ुरैश के सरदारों की एक सभा में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के बारे में बातें हो रही थीं, इतने में एक व्यक्ति जो किसी यात्रा से वापस आया था, खड़ा होकर बोला—

> ''मैंने तीन आदमियों को समुद्र-तट के क़रीब से गुज़रते हुए देखा है, मुझे विश्वास है कि वे मुहम्मद और उनके साथी ही होंगे।''

यह ख़बर सुनते ही सभा में खलबली मच गई। हर व्यक्ति के दिल में सौ ऊँटों के पुरस्कार की इच्छा चुटकियाँ लेने लगी। इसी सभा में सुराक़ा बिन जुअसुम भी शामिल था। यह बहुत ही बुद्धिमान और चालाक आदमी था, उसने तुरन्त बात बना दी—

> ''नहीं मैं उन्हें जानता हूँ, वे लोग मुहम्मद के साथी नहीं हैं, वे तो अपने किसी काम से अभी-अभी इसी रास्ते से गए हैं।''

मौजूद लोग भ्रम में पड़ गए। सुराक़ा थोड़ी देर बैठा रहा, जब उसे विश्वास हो गया कि लोगों का ध्यान उस बात की ओर से हट गया है, तो वह उठा और अपने घर की तरफ़ चल दिया। घर पहुँचकर उसने नौकर को हुक्म दिया—''घोड़ा तैयार करके मक्का के बाहर पहाड़ के क़रीब में पहुँच जाओ और मेरा इन्तिज़ार करो।''

वह जल्दी-जल्दी हथियारों से सुज्जित हुआ और सबकी नज़रों से बचता-बचाता मक्का से बाहर पहुँच गया, जहाँ उसका घोड़ा तैयार खड़ा था। वह उछलकर घोड़े पर सवार हुआ और उसकी लगाम ढीली छोड़कर उसे समुद्र-तट की तरफ़ जानेवाली सड़क पर बेतहाशा दौड़ा दिया। अचानक घोड़े ने ज़ोर की ठोकर खाई और सुराक़ा नीचे आ गिरा। वह कपड़े झाड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ और दोबारा घोड़े पर सवार हो गया। घोड़ा फिर हवा से बातें करने लगा, लेकिन सुराक़ा का दिल बैठा जा रहा था, क्योंकि रवाना होते ही घोड़े का ठोकर खाना अरब में बहुत बड़ा अपशकुन समझा जाता था। वापसी का ख़याल दिल में आया, मगर सौ ऊँट के भारी पुरस्कार ने उसे वापस नहीं होने दिया। वह आगे ही बढ़ता रहा।

इधर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और उनके साथी आराम से अपना सफ़र तय कर रहे थे। अब सूरज पश्चिम की ओर बढ़ने लगा था। परछाइयाँ धुंधलाने लगीं थीं कि अचानक अबू बक्र (रज़ि०) ने पीछे मुड़कर देखा। उन्हें दूर एक सवार की परछायीं दिखाई दी, जो तेज़ी के साथ उन्हीं की ओर बढ़ती चली आ रही थी। उनका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहा—

"ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! कोई हमारा पीछा कर रहा है। वह देखिए— एक सवार जल्द से जल्द हम तक पहुँचने की कोशिश में है।"

"अबू बक्र! घबराओ नहीं, ख़ुदा हमारा मददगार है।" नबी (सल्ल०) ने यक़ीन और इत्मीनान के साथ जवाब दिया।

सुराक़ा का घोड़ा अब क़रीब आ गया था, वह साफ़ नज़र आ रहा था और घोड़े की टापों की आवाज़ सुनाई दे रही थी, लेकिन— घोड़े ने फिर एक ठोकर खाई और उसके पैर घुटनों तक रेत में धँस गए। सवार उलटकर ज़मीन पर गिरा उसका चेहरा रेत में धँस गया। अब तो सुराक़ा को यक़ीन हो गया कि ये सब मुहम्मद (सल्ल०) की बद्दुआ (श्राप) का असर है। वह ख़ूब समझ गया कि ख़ुदा अपने रसूल की रक्षा कर रहा है। उसने वहीं से तेज़ आवाज़ में कहा—

"मैं जुअसुम का बेटा सुराक़ा हूँ। मैं जानता हूँ कि आप की बद्दुआओं से मेरे घोड़े के पैर धँस गए हैं। मैं अपने ख़याल से बाज़ आता हूँ। अब आप दुआ कर दीजिए कि इसके पैर रेत से निकल आएँ।"

रसूल (सल्ल०) सारे विश्व के लिए करूणामय और दयालु थे। आप (सल्ल०) को सुराक़ा पर तरस आ गया और उसके हक़ में दुआ कर दी। उसका घोड़ा उस बड़ी विपत्ति से स्वतन्त्र हो गया। सुराक़ा ने फिर निवेदन किया—"मैं आप से कुछ अर्ज़ करना चाहता हूँ।"

"उससे मालूम करो वह हम से क्या चाहता है।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अबू बक्र (रज़ि०) से कहा।

हज़रत अबू बक्र ने ऊँची आवाज़ से पुकार कर कहा— "तुम अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से क्या कहना चाहते हो?"

"मैं चाहता हूँ कि वे मुझे क्षमादान की तहरीर लिख दें।" सुराक़ा ने जवाब दिया।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने आमिर बिन फ़ुहैरा (रज़ि०) से चमड़े के एक

टुकड़े पर क्षमादान का फ़रमान लिखवा कर सुराक़ा को प्रदान कर दिया। तहरीर लेकर वह मक्का वापस हो गया। वहाँ उसने उस घटना का कोई वर्णन नहीं किया, बल्कि लोगों को बहकाता ही रहा, ताकि उस तरफ़ किसी का ध्यान ही न जाए।

(7)

"ऐ जगत् के पालक तू ही उनका रक्षक है। तेरे ही आदेश से उन्होंने बाहर क़दम निकाला है। अब तू ही उनका रखवाला है। तुझे छोड़कर अनेक झूठे देवताओं के उपासकों की पकड़ से उन्हें बचाना तेरा ही काम है। ऐ मेरे मालिक! उन्हें सकुशल यसरिब पहुँचा दे।" हज़रत अली (रज़ि०) के हाथ सारी इज़्ज़त के मालिक और स्वामियों के स्वामी के दरबार में फैले हुए थे और आँखें आँसुओं से तर थीं।

दुआ से निवृत्त होकर उन्होंने आँसू पोंछे और फिर इधर-उधर एक नज़र डालकर इत्मीनान कर लिया कि कोई दूसरा वहाँ मौजूद नहीं है। वे घर से बाहर आ गए। मक्का का माहौल मुसलमानों के लिए अब बहुत ही प्राणघातक था, क्योंकि नबी (सल्ल०) के सही सलामत बचकर निकल जाने की वजह से क़ुरैश भड़के हुए थे। अपनी पराजय का एहसास उन्हें और उत्तेजित किए हुए था। जो मुसलमान इक्का-दुक्का रह गए थे, उनकी ज़ान पर बन आई थी। क़ुरैश हर एक को संदेह की नज़र से देखते थे।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की हिदायत के अनुसार हज़रत अली (रज़ि०) जब लोगों की अमानतें वापस करने जाते तो उनपर सवालों की बौछार हो जाती और फिर अनभिज्ञता का प्रदर्शन करने पर हर व्यक्ति उनको घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगता। कुछ मुँह फट कह देते— "क्यों न हो— साँप का बच्चा संपोलिया ही होता है।"

हज़रत अली (रज़ि०) किसी को कोई जवाब न देते और मौन रहते। मगर नबी (सल्ल०) की जुदाई उनके लिए असह्य हो रही थी और मक्का के घृणा, क्रोध और दुख से भरे वातावरण में तो दम घुटता महसूस हो रहा था, मगर मजबूर थे। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते थे। तकलीफ़ें पहुँच रही हैं तो पहुँचे। दम घुटता है तो घुट जाए— मगर— अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की साख पर चोट न आने पाए। कोई ज़बान यह न कह सके कि "हमारी अमानत लेकर भाग गए।" इसी लिए तो जिन-जिनकी अमानतें थीं हज़रत अली (रज़ि०) उनको पहुँचाते रहे और उनकी जली-कटी बातें सुनते रहे।

तीन दिन की दौड़-धूप के बाद जब हज़रत अली (रज़ि०) इस ज़िम्मेदारी से

निवृत्त हो गए तो आप पर यसरिब की धुन सवार हुई। एक दिन मौक़ा पाकर मक्कावालों की आँखों में धूल झोंककर यसरिब की ओर रवाना हो गए। रहस्य खुल जाने के डर से आप (रज़ि०)) ने कोई सवारी भी नहीं ली, बल्कि पैदल ही निकल खड़े हुए। बस दर्शन की अभिलाषा मार्गदर्शक थी और साहस सहयात्री।

आप अकेले सारी-सारी रात और पूरे-पूरे दिन पैदल चलते रहे। न सूखे मैदान और अति दुष्कर रास्तों की आप ने चिन्ता की और न सिर पर आग उगलते हुए सूरज और पैरों-तले तप्ते हुए पत्थर और दहकते हुए रेत के कण आपको रोक सके— प्रेम-मार्ग का यात्री चलता रहा— चलता रहा— तलवों में छाले पड़ते रहे— फूटते रहे— मगर— प्रेम की आग को ठण्डी न कर सके, बल्कि उसकी लपटें ऊँची से ऊँची होती गईं। जिसकी गर्मी से यात्री की गति में और तेज़ी आती गई।

अन्ततः कुबा की ऊपरी आवादी नज़र आने लगी, जो यसरिब से लगभग तीन मील इसी तरफ़ थी। अब तो हज़रत अली (रज़ि०) की व्याकुलता की स्थिति देखने योग्य थी। प्रेम की मदिरा में चूर वे क़दम रखते कहीं, पड़ते कहीं। बहरहाल इसी आत्मविस्मृत की दशा में जब आपने कुबा की आबादी में प्रवेश किया, तो मालूम हुआ कि रिसालत के चिराग़ रसूले अकरम (सल्ल०) अभी इसी बस्ती में अपना प्रकाश और आभा फैला रहे हैं। पतिंगों की तरह दौड़कर रिसालत की दीपशिखा के समक्ष पहुँच गए।

"अली— तुम आ गए।" कहते हुए स्नेह और दयालुता के सागर ने उन्हें अपने नूरानी सीने से लगा लिया। दिल से दिल मिल गया, और—

"और उम्र भर की बेक़रारी को क़रार आ ही गया।"

(8)

कुबा की आबादी में एक ख़ुदा के घर (मस्जिद) की नींव डालकर कुछ दिनों के बाद इस मुबारक क़ाफ़िले ने यसरिब की ओर प्रस्थान किया। कुबा से यसरिब तक आप (सल्ल०) पर जान न्योछावर करनेवाले दोनों ओर पँक्तियों में खड़े हुए थे। रास्ते में अंसार के मुहल्ले पड़ते थे, हर क़बीला उपस्थित होकर निवेदन करता—

"हुज़ूर!— यह घर है— यह माल है— ये जानें हैं।"

आप (सल्ल०) विवशता प्रदर्शित करते, भलाई की दुआएँ देते और बढ़ते जाते थे। जैसे-जैसे शहर क़रीब होता जाता था, लोगों का जोश बढ़ता जाता था, जब

आप (सल्ल०) शहर में दाख़िल हुए तो हर व्यक्ति इच्छुक था कि आप (सल्ल०) उसके घर की शोभा बढ़ाएँ। अन्ततः आप (सल्ल०) ने अपनी ऊँटनी की नकेल ढीली छोड़ दी और कहा—

"इसे छोड़ दो! यह ख़ुदा के हुक्म से ख़ुद कहीं ठहर जाएगी।"

ऊँटनी रसूल (सल्ल०) को लिए हुए यसरिब के रास्तों से गुज़रती रही। पीछे-पीछे सहाबा (रज़ि०) की एक बहुत बड़ी भीड़ थी, जो ऊँची आवाज़ के साथ ये नारे लगाती जाती थी :—

"अल्लाहु अकबर! मुहम्मद (सल्ल०) तशरीफ़ ले आए— अल्लाहु अकबर— अल्लाह के रसूल (सल्ल०) तशरीफ़ ले आए।"

औरतें अपनी-अपनी छतों पर चढ़कर ख़ुशी के गीत गाने लगीं—

"चौदहवीं का चाँद निकल आया है,
कोहे वदाअ[1] की घाटियों से
हम पर ख़ुदा का शुक्र वाजिब है।"

और दुआ माँगनेवालों ने दुआ माँगी—

"ऐ हम पर प्रकट होनेवाले—!

आप ऐसी बातें लेकर आए हैं—

जिनका मानना हम पर अनिवार्य है—"

मासूम लड़कियाँ दफ़ बजा-बजाकर गा रही थीं—

"हम ख़ानदाने नज्जार की बेटियाँ हैं।

मुहम्मद (सल्ल०) क्या अच्छा पड़ोसी है।"

नबी (सल्ल०) ने उन लड़कियों से पूछा।

"क्या तुम मुझको चाहती हो?"

वे बोलीं— "जी हाँ—!"

आप (सल्ल०) ने जवाब दिया—

"मैं भी तुमको चाहता हूँ।"

---

1. यसरिब के निवासी यात्रा पर जानेवालों और मेहमानों को शहर से बाहर स्थित एक पहाड़ी तक छोड़ने जाते थे, इसलिए उस पहाड़ी का नाम कोह (पहाड़) वदाअ (विदा) पड़ गया।

ऊँटनी चली जा रही थी। अन्ततः वह हज़रत अबू अय्यूब अंसारी (रज़ि०) के मकान के सामने पहुँचकर खड़ी हो गई। हज़रत अबू अय्यूब (रज़ि०) मारे ख़ुशी के उछल पड़े। दूसरे सहाबा (रज़ि०) को उनकी क़िस्मत पर ईर्ष्या हुई। सब उन्हें "मेज़बाने-रसूल (सल्ल०) अर्थात् रसूल की मेहमानदारी करनेवाला कहकर पुकारने लगे। नबी (सल्ल०) वहीं उतर पड़े।

इस तरह यह मुबारक क़ाफ़िला अपने लक्ष्य-स्थल पर पहुँच गया। उस दिन से यह शहर यसरिब के बजाए "मदीनतुन्नबी" (नबी का शहर) कहलाने लगा। वर्तमान में अब यह मदीना के नाम से मशहूर है।

शांति मिल ही गई!

कल जिस पहाड़ी की चोटी से हक़ का एलान किया गया था, आज उसी की गोद में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को अकेला पाकर अबू जहल सख़्त दुश्मनी पर उतर आया था। उसकी ज़बान क़ैंची की तरह चल रही थी। बुरा-भला कहते-कहते वह अब गालियाँ बकने लगा था। आप (सल्ल०) ने उसकी गालियों का कोई जवाब नहीं दिया, बल्कि ख़ामोशी के साथ सिर झुकाए हुए खड़े रहे। इस ख़ामोशी ने आग पर तेल का काम किया। अबू जहल खिसियाकर और अधिक भड़क उठा। इसी पागलपन की हालत में उसने एक पत्थर उठाया और आप (सल्ल०) की ओर ज़ोर से फेंका। पत्थर आपके मुबारक सिर पर लगा और आप (सल्ल०) का चेहरा लहू-लुहान हो गया। किसी स्त्री की एक हलकी-सी चीख़ सुनाई दी, जो वातावरण में विलीन हो गई। अबू जहल बड़बड़ाता हुआ ख़ान-ए-काबा की ओर चला गया। नबी (सल्ल०) अपने प्रकाशमान चेहरे से ख़ून पोंछते हुए अरक़म के घर की ओर रवाना हो गए।

(2)

जुदआन तैमी के पुत्र अब्दुल्लाह तैमी के दरवाज़े पर खड़ी उनकी दासी यह सारा तमाशा देख रही थी। अबू जहल ने नबी (सल्ल०) की ओर जब पत्थर फेंका था तो उसी के मुँह से चीख़ निकली थी। आप (सल्ल०) के मुबारक माथे से बहता हुआ ख़ून देखकर वह दुख और क्रोध से तिलमिला उठी— मगर वह कर ही क्या सकती थी— अबू जहल क़ुरैश के सरदारों में से था और वह सिर्फ़ एक दासी थी— जो समाज में कोई हैसियत न रखती थी।

"ऐसे इंसानों से तो जानवर ही भले जो अकारण आक्रमण तो नहीं करते।" वह बड़बड़ाने लगी "जंगली— ज़ालिम— ख़ुदा के दुश्मन ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को घायल कर ही दिया। अफ़सोस—! कितना ख़ून बह गया आप (सल्ल०) के मुबारक सिर से।"

वह इन्हीं विचारों में खोई हुई थी कि अबू क़ुबैस नामक पर्वत की ओर से उसे क़दमों की धमक सुनाई दी। वह चौंक पड़ी। एक भारी भरकम शक्तिशाली व्यक्ति

तेज़ क़दमों से नीचे की तरफ़ आ रहा था। उनकी आँखों से दबदबा और चौड़े चकले सीने से तेजस्विता टपक रही थी। उसकी बग़ल में एक तरफ़ तलवार और दूसरी तरफ़ धनुष लटक रहा था। बाँदी ने देखते ही पहचान लिया कि वे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के चचा क़ुरैश के शेर अब्दुल मुत्तलिब के बेटे हज़रत हमज़ा हैं, जो शिकार से वापस आ रहे हैं और दैनिक नियम के मुताबिक़ घर जाने से पहले काबे की परिक्रमा करने जा रहे हैं।

"अबू अम्मारा से मैं ज़रूर शिकायत करूँगी।" दासी का चेहरा लाल हो गया। जब हमज़ा उसके क़रीब पहुँचे तो उसने कहा—

"अबू अम्मारा! मालूम होता है आप लोगों की प्रतिष्ठा और स्वाभिमान बिलकुल समाप्त हो चुका है।"

"क्या बक रही है, इब्ने जुद्आन की बाँदी!" हज़रत हमज़ा के बढ़ते हुए क़दम रुक गए।

"मैं सच कह रही हूँ— अबू अम्मारा!" बाँदी का लहजा व्यंग की चुभती हुई छुरी थी।

"बताती क्यों नहीं—! क्या सच कहना चाहती है।" अग्निवर्षक नज़रें बाँदी पर गड़ गईं, जिनकी ताप को महसूस करते हुए उसने एक झुरझुरी-सी ली, लेकिन फिर हिम्मत करके बोली—

"बनी मख़्ज़ूम के क़बीले के बदमाश मुहम्मद (सल्ल०) को कष्ट देते हैं और आप उसका कोई इलाज नहीं कर सकते।"

"क्यों, क्या हुआ?" हज़रत हमज़ा की गरजदार आवाज़ फिर सुनाई दी।

"आपको शिकार से कहाँ फ़ुरसत? पता भी है कि अबू जह्ल आपके भतीजे मुहम्मद (सल्ल०) के साथ क्या बरताव करता है?" लौण्डी ने हज़रत हमज़ा के स्वाभिमान की धमनी में एक और छुरी चुभा दी।

"आख़िर साफ़-साफ़ क्यों नहीं बताती कि क्या हुआ?" हज़रत हमज़ा की आवाज़ में झुंझलाहट थी।

"आपके भतीजे अभी-अभी यहाँ से गुज़र रहे थे। संयोग से अबू जह्ल भी आ गया। उसने उन्हें बहुत बुरा-भला कहा, गालियाँ दीं, यहाँ तक कि पत्थर मारकर घायल कर दिया।" लौण्डी ने एक ही साँस में सारा क़िस्सा सुना दिया।

"जो कुछ तू कह रही है क्या यह सब तूने स्वयं देखा और सुना है ?" हज़रत हमज़ा को क्रोध आ गया।

"हाँ, हाँ— अबू जहल ने जो कुछ किया है, वह मैंने ख़ुद देखा है।" लौण्डी साँस लेने के लिए रुकी, फिर बोली, "उसकी सारी गालियाँ मैंने अपने कानों से सुनी हैं।"

हज़रत हमज़ा मारे ग़ुस्से के आपे से बाहर हुए जा रहे थे। उनकी लाल-लाल चमकदार आँखें बाहर निकली आ रही थीं। उनके सामने हाशमियत का स्वाभिमान प्रश्नवाचक निशान बनकर आ गया था। उनकी मुट्ठियाँ मज़बूती के साथ भिंच गईं और वे काबा की ओर रवाना हो गए।

(3)

अबू जहल ख़ान-ए-काबा के आँगन में बैठा हुआ अपने साथियों से बातों में व्यस्त था, इतने में हज़रत हमज़ा दनदनाते हुए उसके पास पहुँचे और ग़ुस्से की हालत में अपनी भारी कमान उसके सिर पर दे मारी, उसका सिर फट गया और चेहरा ख़ून में तर हो गया। फिर आप अतिक्रुद्ध होकर उससे बोले, "तू मेरे भतीजे को गालियाँ देता है, जबकि वह तेरे मामले में अपनी ज़बान बन्द रखता है—तू उसे कष्ट पहुँचाता है, जो तुझे भलाई की ओर बुलाता है।"

हज़रत हमज़ा अतिशय प्रभावशाली व्यक्तित्व के मालिक थे। आपको क्रोधित देखकर प्रत्येक व्यक्ति की बोली बन्द थी। अन्ततः स्वयं अबू जहल ने अपनी सफ़ाई प्रस्तुत की।

"अबू अम्मारा—! बात यह है कि मुहम्मद (सल्ल०) हमें बेअक़्ल बताता है। हमारे ख़ुदाओं को बुरा-भला कहता है। पूर्वजों के बताए हुए रास्ते के विरुद्ध चलता है। यहाँ तक कि उसने हमारे ग़ुलामों और दासियों तक को हमसे विमुख कर दिया है।"

"तुम से अधिक बेअक़्ल और बेवकूफ़ कौन होगा, जो ख़ुदा को छोड़कर पत्थरों को पूजते हो। गवाह रहना आज से मैं भी अपने भतीजे के धर्म को स्वीकार करता हूँ।"

अति क्रोध की स्थिति में हज़रत हमज़ा के मुँह में जो कुछ आया वह कह गए।

"क्या तुम भी विधर्मी हो गए ?" कुछ ज़बानें एक साथ चीख़ उठीं।

"निस्संदेह—अगर तुम सच्चे हो तो मुझे मेरे निर्णय से रोककर देखो!" हज़रत हमज़ा की आवाज़ काबा के आँगन में गूँज उठी।

हर ओर सन्नाटा छा गया। किसी में इतना साहस न था, जो हज़रत हमज़ा को जवाब देता। वे बात पूरी करके चल दिए। सीधे रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और गर्वीले स्वर में कहने लगे—"भतीजे—! ख़ुश हो जाओ! आज मैंने हिशाम के बेटे उमर यानी अबू जहल से तुम्हारा बदला ले लिया है।"

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अच्छा अवसर आया समझकर हज़रत हमज़ा के हृदय पर एक मानसिक आघात किया।

"चचा जान—! इस बदला लेने के काम से मैं ख़ुश नहीं हुआ। हाँ मुझे ख़ुशी तो उस समय होती जब आप स्वयं इस्लाम स्वीकार कर लेते।"

आशा के विरुद्ध यह उत्तर सुनकर हज़रत हमज़ा चौंक पड़े। हुज़ूर (सल्ल०) ने हिकमत का जो तीर चलाया था वह जाकर ठीक निशाने पर बैठा, यद्यपि अभी थोड़ी ही देर पहले वे एक भीड़ के सामने इस्लाम स्वीकार करने की घोषणा कर चुके थे, मगर वे शब्द ग़ुस्से की स्थिति में मुँह से निकल गए थे। अब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का यह जवाब सुनकर वे अपने आपको एक दोराहे पर खड़ा महसूस कर रहे थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब वे किधर जाएँ, अन्ततः बिना कोई जवाब दिए वे अपने घर की ओर चल दिए।

(4)

यह रात हज़रत हमज़ा के लिए बड़ी बेचैनी की रात थी। अज्ञानता के पक्षपात और इस्लाम के पक्षपात का अन्तर नबी (सल्ल०) के इस संक्षिप्त वाक्य से उनपर अच्छी तरह प्रकट हो चुका था। सत्य का अनुमोदन उन्हें अपनी ओर खींच रहा था, मगर ख़ानदान का गौरव और बाप-दादा का तरीक़ा उनका दामन छोड़ने को तैयार न थे। वे विचित्र असमंजस में फंसे हुए थे, इससे मुक्ति पाने के लिए वे बराबर दुआ भी करते रहे कि अल्लाह उन्हें सीधा रास्ता दिखाए और सच्चाई पर जमने की प्रेरणा दे। इसी उलझन और परेशानी में न जाने कितनी रात आँखों ही आँखों में बीत गई। अन्ततः सोचते ही सोचते न जाने कब वे सो गए।

सुबह के समय जब आँख खुली तो उन्होंने महसूस किया कि उनके मस्तिष्क का बोझ कम हो चुका है। उनके दिल से सभी संदेह और भ्रम दूर हो चुके थे।

उनका हृदय ईमान और विश्वास की रोशनी से जगमगा उठा था। वे सीधे अरक़म के घर की तरफ़ रवाना हो गए,जहाँ रसूल (सल्ल०) कुछ सहाबा (रज़ि०) के साथ विराजमान थे। नबी (सल्ल०) ने हज़रत हमज़ा के दमकते हुए चेहरे को देखकर अनुमान लगा लिया कि वे सच्चाई के लिए एकाग्रचित्त हो चुके हैं। इसलिए आप (सल्ल०) मुस्कुराते हुए उनसे बोले—"कहिए चचा जान! कैसे आना हुआ?"

"भतीजे—! मुझे कलिमा पढ़ा दो।" हज़रत हमज़ा (रज़ि०) साकार नम्रता बने हुए थे।

हज़रत हमज़ा (रज़ि०) की ज़बान से यह वाक्य सुनते ही उपस्थित लोगों के चेहरों पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई और अरक़म का मकान नारा-ए-तकबीर से गूँज उठा।

एक मंज़िल तीन राही

हुदैबिया के सन्धि-पत्र पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो चुके थे और समझौते की शर्तों का पालन शुरू हो गया था। रसूल (सल्ल०) सभी मुसलमानों के साथ मदीना तय्यिबा वापस पहुँच चुके थे। मक्कावाले ख़ुश थे कि आई हुई मुसीबत टली, लेकिन कुछ क़ुरैशी जो अधिक अनुभवी और दूरदर्शी थे, उनकी दूरदर्शी नज़रें शाँत वातावरण की पृष्ठभूमि में एक उमड़ते हुए तूफ़ान को देख रही थीं। इसी कारण वे कुछ अधिक ही परेशान नज़र आ रहे थे। उन्हीं में ख़ालिद बिन वलीद भी थे।

वे एक खजूर की छाँव में अकेले बैठे कुछ सोच रहे थे। चेहरे पर उदासी छाई हुई थी, उनका व्याकुल दिल हुदैबिया की संधि पर आँसू बहा रहा था। उनकी दूरदर्शिता इस संधि को मुसलमानों की जीत समझ रही थी— इसी लिए जिस समय संधि हो रही थी, वे मक्का छोड़कर कहीं चले गए थे, उनके स्वाभिमान को यह गवारा न था कि मुसलमान इतनी आज़ादी के साथ मक्का आएँ। उनकी गरुड़ जैसी तेज़ नज़रों ने बहुत दूर तक के ख़तरों को देखना शुरू कर दिया। झुकी हुई नज़रें सामने की तरफ़ उठ गईं और विस्तृत शून्य को घूरने लगीं, एक सफल और अनुभवी सेनापति पिछली तीनों जंगों का जायज़ा ले रहा था।

उनकी नज़रों के सामने बद्र का मैदान था, एक तरफ़ एक हज़ार की सशस्त्र फ़ौज और दूसरी ओर बेबस और लगभग निहत्थे तीन सौ तेरह व्यक्तियों का एक छोटा-सा गिरोह, जिसका सफ़ाया बस एक हमले में निश्चित था, लेकिन हुआ क्या? दिन छिपते-छिपते न्यूनता ने बाहुल्य को पराजित कर दिया। आख़िर यह कैसे हुआ? — मानवबुद्धि समझने में असमर्थ थी।

दूसरी ओर उहुद की वादी थी। जिसमें मक्कावालों का टिड्डी दल पड़ाव डाले हुए था। उनका एक-एक सिपाही बदले की भावना से भरा हुआ था। बद्र की लड़ाई के मृतकों का बदला लेने के लिए उन्होंने मदीनेवालों पर चढ़ाई कर दी थी। इस बार उन्हें आशा थी कि विजय उनकी होगी। क्योंकि उनका हर सिपाही यही निश्चय करके आया था कि मारेंगे या मर जाएँगे, लेकिन पासा फिर पलट गया। अन्ततः उन्हें जंग का मैदान छोड़ना ही पड़ा। वह तो कहिए ख़ालिद बिन वलीद को एक जंगी तरकीब सूझ गई या सच पूछो तो मुसलमानों से संयोगवश एक ग़लती हो गई, जिसका परिणाम उन्हें भुगतना पड़ा। मगर फिर भी विजय उन्हीं को प्राप्त

हुई।

ख़ालिद बिन वलीद ने बैठे-बैठे पहलू बदला और फिर शून्य में घूरने लगे।

"अब तो मुसलमान एक भी न बच सकेगा, उनका बच्चा-बच्चा ख़त्म हो जाएगा।"

इस इरादे के साथ सारा अरब मदीने पर चढ़ आया था। मदीनावालों को संभलने का अवसर ही न मिल पाया। अन्ततः वे मदीना ही में घिर कर रह गए। सिर्फ़ एक खाई दोनों फ़ौजों के बीच सीमा के रूप में रह गई। घिराव लम्बा खिंचा, परेशानी होने लगी। दुश्मनों में ख़ुशियाँ मनाई जाने लगीं। और फिर— आस्तीन के साँपों ने फन उठाना शुरू कर दिया। समय यह सब देख रहा था और मुस्कुरा रहा था। देखते ही देखते आसमान बादलों से ढक गया। हर तरफ़ सन्नाटा छा गया, जो आनेवाले तूफ़ान का पता दे रहा था। वातावरण बहुत ही भयावह हो गया। अल्लाह के अज़ाब के अंधकार ने मक्कावालों की फ़ौज को अपनी लपेट में ले लिया। झूठे ख़ुदाओं के अनुयायियों के दिल दहलने लगे। फिर एक तूफ़ानी हवा चली जिसने उनके तम्बुओं की डोरियाँ तोड़ दीं। सारा सामान तितर-बितर हो गया। फ़ौज में खलबली मच गई, जिधर जिसके सींग समाए उधर भाग खड़ा हुआ।

ख़ालिद बिन वलीद दोनों हथेलियों से अपनी आँखें मलने लगे। उनकी ज़बान से सहसा निकल गया—

"अवश्य ही कोई ईश्वरीय शक्ति उनकी मदद कर रही थी।"

हुदैबिया की संधि की शर्तों में ख़ालिद की दूरदर्शी निगाहें मक्कावालों की उत्साहहीनता और उनकी घबराहट को देख रही थीं, उनके होंठों को फिर कंपन हुई—

"मुहम्मद (सल्ल०) और उनके साथियों का सामना करना बुद्धिमत्ता के विरुद्ध है। निस्संदेह वे अरब पर छाकर रहेंगे।"

(2)

ख़ालिद बिन वलीद ख़ामोश बैठे हुए दूर क्षितिज को तक रहे थे, जहाँ नज़र की सीमा तक फैला हुआ रेगिस्तान आसमान से मिला हुआ था। उनके चेहरे का उतार-चढ़ाव स्पष्ट कर रहा था कि उनका मस्तिष्क विभिन्न विचारों का घर बना हुआ है। इतने में दूर से एक सवार आता हुआ दिखाई दिया। ख़ालिद उसे ग़ौर

से देखने लगे, सवार निकट आकर रुक गया और अपनी पेशानी से पसीना पोछते हुए ख़ालिद से बोला—

"बहुत मौक़े से मिल गए तुम, वरना तुम्हें तलाश करने का कष्ट उठाना पड़ता।"

"क्या है, ऐ भाई!" खड़े होते हुए ख़ालिद ने उससे पूछा।

"मैं मदीना से आ रहा हूँ, तुम्हारे भाई वलीद बिन वलीद ने यह पत्र दिया है।"

ख़ालिद ने बढ़कर पत्र ले लिया। सवार आगे बढ़ गया। ख़ालिद ने व्याकुलता के साथ भाई का पत्र खोला और पढ़ना आरम्भ कर दिया।

भाई ख़ालिद!

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) उमरा के लिए जब मक्का पधारे थे, तो मैं भी उनके साथ था। वहाँ पहुँचकर नबी (सल्ल०) ने आपके बारे में मुझसे पूछा था कि ख़ालिद कहाँ है? मैंने आपको बहुत तलाश किया, लेकिन न जाने आप कहाँ चले गए थे कि मुझे न मिल सके। जब मैंने नबी (सल्ल०) को आपके न मिलने की सूचना दी तो हुज़ूर (सल्ल०) ने कहा कि आश्चर्य है कि ख़ालिद जैसा बुद्धिमान और समझदार व्यक्ति अब तक इस्लाम से दूर क्यों है? यह तो असम्भव है कि इस्लाम की सत्यता उसपर स्पष्ट न हुई हो। काश! उसकी सूझबूझ और योग्यता इस्लाम के काम आती।

भाई! मैं सच कह रहा हूँ कि इस्लाम जैसा सर्वांगपूर्ण और स्पष्ट धर्म कोई और नहीं है और न नबी (सल्ल०) जैसा गुणग्राहक और दयालु मार्गदर्शक मिलना सम्भव है। फिर आख़िर देर करके आप अपने आपको अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की कृपा और स्नेह से क्यों वंचित कर रहे हैं। —तुम्हारा भाई वलीद

वलीद के पत्र ने जलते पर तेल का काम किया और ख़ालिद की आँखों में एक चमक-सी पैदा कर दी, लेकिन दूसरे ही क्षण वे फिर किसी विचार में खो गए। इतने में उनका एक दोस्त सफ़वान उधर से गुज़रा। वह मक्का के एक रईस का लड़का था।

"अबू सुलैमान! ख़ैरियत तो है— किस सोच में डूबे हुए हो?" सफ़वान निकट पहुँचकर उनसे बोला।

ख़ालिद अपना नाम सुनकर चौंक पड़े। निगाह ऊपर उठाई तो सफ़वान को पास खड़ा हुआ पाया।

"ख़ैरियत कहाँ है सफ़वान!" ख़ालिद ने अपनी भावनाओं पर क़ाबू पाते हुए जवाब दिया।

"आख़िर बात क्या हुई— क्यों इतने चिन्तित हो?" उसने फिर प्रश्न किया।

"मैं सोच रहा हूँ कि आख़िर इस संघर्ष का परिणाम क्या होगा?"

"कैसा संघर्ष—?"

"यही जो हमारे और मुसलमानों के बीच चल रहा है।"

"क्यों चिन्ता करते हो— जीत हमारी होगी।" सफ़वान ने गर्व के साथ जवाब दिया।

"यह कैसे—?" ख़ालिद ने सफ़वान के चेहरे पर नज़रें जमा दीं।

"जंग के फ़ैसले अधिक सैनिकों और अस्त्र-शस्त्रों के बाहुल्य पर निर्भर होते हैं और हम इस मामले में मुसलमानों से बहुत आगे हैं।" सफ़वान ने आँखें चमकाते हुए कहा।

"लेकिन सफ़वान—पिछली तीन जंगों के परिणामों ने तुम्हारे इस सिद्धांत को ग़लत साबित कर दिया है।" ख़ालिद ने ज़ोरदार अन्दाज़ में सत्यता को स्पष्ट किया।

"फिर भी जीत क़ुरैश की ही होगी।" सफ़वान ने हठधर्मी से काम लेते हुए जवाब दिया।

"परिस्थितियों के प्रकाश में मुझे कुछ और ही नज़र आ रहा है।" ख़ालिद की आवाज़ तेज़ होती जा रही थी।

"अबू सुलैमान! मालूम होता है कि तुम हिम्मत हार चुके हो। और हतोत्साह हो गए हो।" सफ़वान ने चुटकी ली।

"वास्तविकताओं की ओर से आँखें मूँद लेना बहादुरी नहीं बल्कि कायरता है, सफ़वान!" ख़ालिद ने भी ईंट का जवाब पत्थर से दिया।

"तुम कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो, अबू सुलैमान!"

"परिस्थितियाँ स्वयं कह रही हैं कि मुसलमानों की पीठ पर कोई परोक्ष शक्ति है।" ख़ालिद ने समझाना शुरू किया "तुम स्वयं ज़रा सोचो— मुसलमान जब यहाँ से गए थे तो किस बेबसी की स्थिति में थे और आज मदीने में वे मज़े से ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं। परदेस तो उन्हें देश से अधिक लाभप्रद रहा।" ख़ालिद कहे जा रहे थे और सफ़वान सिर झुकाए खड़ा सुन रहा था।

"उनकी शक्ति दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है और हम भगदड़ के शिकार हैं।"

"इन घटनाओं से तुमने क्या परिणाम निकाला?" सफ़वान ने सवाल किया।

"वही,जो हर दूरदर्शी व्यक्ति निकाल सकता है।"

"अर्थात्—?"

"यही कि मुसलमान सफल होंगे।"

"मान लो अगर ऐसा ही हुआ—तो—?"

"मेरे विचार से दूरदर्शिता की माँग यह है कि हम मदीना चलकर मुहम्मद (सल्ल०) की अधीनता स्वीकार कर लें।"

"क्या कहा—?" सफ़वान ने आश्चर्य के साथ कहा।

"वे कोई पराए नहीं हैं, हमारे ही भाई हैं। मुझे विश्वास है कि वे हमारे साथ सद्व्यवहार करेंगे।"

"लेकिन—हमारा ख़ानदानी और जातीय गौरव इसे किसी क़ीमत पर सहन नहीं कर सकता।" सफ़वान ने पूरी दृढ़ता के साथ जवाब दिया।

"तुम्हारा यह निर्णय बुद्धि और समझदारी के बिलकुल विरुद्ध है।" ख़ालिद ने सफ़वान को फिर झंझोड़ा।

"कुछ भी हो—लेकिन अभी मैं तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाने को तैयार नहीं हूँ।" सफ़वान ने फिर उसी अन्दाज़ में जवाब दिया।

"यह समझदारी और बुद्धिमता का फ़ैसला नहीं, बल्कि भावात्मक फ़ैसला है।" ख़ालिद ने फिर उकसाया।

"अब जैसा तुम समझो।"

यह कह कर सफ़वान एक तरफ़ को चला गया।

(3)

"मैं तुम्हारे विचारों से पूरी तरह सहमत हूँ।" ख़ालिद के विशिष्ट दोस्त उसमान बिन तलहा ने उनका समर्थन करते हुए कहा, "मैं खुली आँखों से देख रहा हूँ कि मुहम्मद को अल्लाह की सहायता प्राप्त है, इस्लाम की सच्चाई स्पष्ट रूप से सामने आ चुकी है।"

"फिर आख़िर तुम्हारा क्या विचार है? ख़ालिद ने उसमान के दिल को टटोलते हुए पूछा।

"इस विषय में मैं स्वयं तुमसे बातचीत करना चाहता था, लेकिन इस्लाम की दुश्मनी में तुम्हारी कठोरता, बाधक हो रही थी।" उसमान ने अपना दिल खोलकर सामने रख दिया।

"अब क्या इरादा है?" ख़ालिद ने फिर सवाल किया।

"आख़िर तुम्हारा क्या फ़ैसला है?" उसमान ने उलटा सवाल किया।

"हमें मुसलमान हो जाना चाहिए।" ख़ालिद ने निर्णयात्मक ढंग से जवाब दिया।

"सच कहते हो ख़ालिद।"

उसमान बढ़कर ख़ालिद से गले लग गए।

"यहाँ का वातावरण अब हमारे लिए अनुकूल नहीं है। जल्द से जल्द हमें इसे छोड़ देना चाहिए।" ख़ालिद ने अपनी राय रखी।

"हमें कल ही मदीना के लिए प्रस्थान कर जाना चाहिए।" उसमान बिन तलहा सहमत हो गए।

दूसरे दिन दोनों दोस्तों ने चुपचाप मदीने के लिए प्रस्थान किया।

(4)

दोनों दोस्त रात बिताने के लिए एक गाँव में ठहरे। खजूर के एक पेड़ के नीचे उन्होंने बिस्तर लगा लिया और वहीं बैठकर बातें करने लगे। इतने में दूर से एक मुसाफ़िर उसी गाँव की ओर आता हुआ दिखाई दिया।

"यह क़ौन आ रहा है?" ख़ालिद ने उसकी तरफ़ देखते हुए कहा।

मुसाफ़िर और निकट आ गया था। उसे देखकर उसमान बिन तलहा बोल उठे।

"यह तो अम्र बिन आस मालूम होते हैं।"

"वह यहाँ कहाँ—!" ख़ालिद ने आश्चर्य से कहा "वह तो हब्शा चले गए थे।"

मुसाफ़िर और क़रीब आ चुका था। उसमान ने उसे ग़ौर से देखते हुए कहा।

"देख लो! अम्र बिन आस ही हैं।"

"अंधेरे में तुमने ख़ूब पहचाना।" ख़ालिद ने कहा।

मुसाफ़िर बिलकुल निकट आ गया था। दोनों ने खड़े होकर उसका स्वागत किया और फिर अपने पास ही बिठा लिया।

"कहाँ से आ रहे हो?"

"हब्शा से।"

"कहाँ का इरादा है?"

"मदीने का।"

"बहुत अच्छा—! हमारा तुम्हारा साथ हो जाएगा।"

"तुम मदीना किस लिए जा रहे हो?" अम्र बिन आस ने चकित होकर पूछा।

"हम पर सत्य प्रकट हो चुका है।" ख़ालिद ने प्रेमपूर्वक जवाब दिया, "हम मुसलमान होने जा रहे हैं।"

"मैं भी इसी मक़सद से जा रहा हूँ।" अम्र बिन आस ने ख़ुश होते हुए कहा।

"इस समय तो यहीं आराम करो।" उसमान बिन तलहा ने कहा, "सुबह साथ ही मदीना चलेंगे।"

(5)

मस्जिदे नबवी में नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) विराजमान थे। सहाबा किराम (रज़ि०) घेरा बनाए बैठे हुए थे। शिक्षा-दीक्षा का सिलसिला चल रहा था। बातचीत के दौरान में नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"देखो—! मक्के ने अपने जिगर के टुकड़ों को हमारी ओर फेंक दिया है।"

और फिर नबी (सल्ल०) ने तीनों के नाम बता दिए। यह शुभ समाचार सुनकर सहाबा किराम (रज़ि०) में ख़ुशी की लहर दौड़ गई। सबसे अधिक ख़ुशी वलीद को थी। वलीद उनकी अगवानी के लिए मदीने की आबादी से बाहर निकलकर गए। रास्ते ही में तीनों से मुलाक़ात हो गई।

"जल्दी चलो! अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को तुम्हारे इरादे की सूचना हो चुकी है।" वलीद अपने भाई से बोला "मुसलमान तुम्हारा इन्तिज़ार कर रहे हैं।"

"हमने तो नबी (सल्ल०) को कोई सूचना नहीं दी!" ख़ालिद ने आश्चर्य के साथ कहा, "फिर उनको कैसे ख़बर हो गई?"

"नबी (सल्ल०) को उनका पालनहार परोक्ष की बातें बताता रहता है।" वलीद ने जवाब दिया।

जैसे ही ये चारों मस्जिदे नबवी में दाख़िल हुए मौजूद लोगों के चेहरे ख़ुशी से चमक उठे।

"कहो ख़ालिद कैसे आए?" नबी (सल्ल०) स्नेह भरे स्वर में बोले।

"हम तीनों मुसलमान होने के लिए आए हैं।"

ख़ालिद की ज़बान से ये शब्द सुनते ही सहाबा किराम आनन्दमग्न हो गए और मस्जिदे नबवी अल्लाहु अकबर के नारों से गूँज उठी।

जादू वह जो.....!

"शुभागमन, स्वागतम—! ऐ शैख़, स्वागतम!" मक्का के सरदारों के एक दल ने तुफ़ैल बिन अम्र दौसी (रज़ि०) का अभिनन्दन करते हुए कहा।

"हमें गर्व है कि आप जैसी सम्मानित हस्ती हमारे यहाँ आई।" एक सरदार बोला।

"आप चातुर्य और बुद्धिमता के साकार रूप हैं।" दूसरे सरदार ने चापलूसी के अन्दाज़ में कहा।

"काव्य व साहित्य और भाषा व विज्ञान की प्रतिष्ठा आप ही के दम से हैं।" तीसरे ने पुट देते हुए टिप्पणी की।

क़बीला दौस यमन के आस-पास के क्षेत्र में आबाद था, तुफ़ैल इसी क़बीले का सरदार था। उसके क़बीलेवाले उसपर अपनी जान छिड़कते थे। कौटुम्बिक मान-सम्मान व प्रभुत्व और पद-प्रतिष्ठा उसे विरासत में मिली थी। व्यक्तिगत रूप से वह बुद्धि और चातुर्य का साकार रूप और भाषा व साहित्य का विद्वान था, इसी कारण यमन के पूरे क्षेत्र में वह बहुत ही आदर की दृष्टि से देखा जाता था। दूसरे क़बीले भी उसकी बातों को बड़ा वजन देते थे।

तुफ़ैल के मक्का आने की ख़बर जब क़ुरैश के सरदारों को हुई तो वे बहुत चिंतित हुए कि इसकी मुलाक़ात कहीं मुहम्मद (सल्ल०) से न हो जाए। उनका विचार था कि अगर वह मुहम्मद (सल्ल०) की बातों में आ गया तो उसके साथ-साथ उसका पूरा क़बीला भी मुसलमान हो जाएगा, इसी लिए उन्होंने उसका स्वागत किया और उसे शीशे में उतारने के लिए उसका ख़ूब स्वागत-सत्कार किया। जब तुफ़ैल उनके आतिथ्य से अच्छी तरह प्रभावित हो गया तो इधर-उधर की चिकनी-चुपड़ी बातों के बाद मतलब की बात कहनी शुरू की। एक दिन एक सरदार ने बातचीत करते हुए कहा—"श्रीमान्—! शायद आपने भी सुना हो कि हमारे यहाँ मुहम्मद नाम का एक व्यक्ति पैदा हुआ है जो बहुत बड़ा जादूगर है।"

वह किस ख़ानदान का सदस्य है?" तुफ़ैल ने पूछा—

"वह ख़ानदान बनी हाशिम से सम्बन्ध रखता है और अबू तालिब का भतीजा है।" उसी सरदार ने जवाब दिया।

"उसका ख़ानदान तो बड़ा इ़ज़्ज़तवाला है।" तुफ़ैल कुछ सोचते हुए बोला।

"उसके कारण हमारी क़ौम की व्यवस्था बिगड़ गई है।" फिर उसी सरदार ने कहा।

"उसके जादू के प्रभाव से बाप-बेटे, भाई-भाई और पति-पत्नी में फूट पड़ गई है"—दूसरे सरदार ने स्पष्ट किया।

"वह क्या पढ़कर जादू करता है?" तुफ़ैल ने फिर सवाल किया।

"इससे तो हम स्वयं अनभिज्ञ हैं, लेकिन इतना मालूम है कि जादू के उन शब्दों में इतना प्रभाव है कि श्रोता उनकी ओर खिंचा ही चला जाता है।" दूसरे सरदार ने जवाब दिया। "हम तो ख़ैर इस मुसीबत में फँसे ही हैं, लेकिन यह नहीं चाहते कि आपकी क़ौम भी इस बला का शिकार हो जाए।" एक और सरदार ने बड़ी हमदर्दी दिखाते हुए कहना शुरू किया। "इसके लिए हमारी निष्ठापूर्ण प्रार्थना है कि आप न तो ख़ुद उससे बात करें, न उसकी बातें सुनें और न उसके पास जाएँ।"

तुफ़ैल सिर झुकाए बहुत ग़ौर से सुनता रहा। क़ुरैश की ऊपरी हमदर्दी, झूठी निष्ठा और स्वार्थपूर्ण सत्कार से वह इतना प्रभावित था कि उनकी नसीहतों पर अमल करने के लिए मजबूर हो गया। जब वह ख़ान-ए-काबा को जाता तो अपने कानों में रूई ठूँस लेता, ताकि मुहम्मद (सल्ल०) की आवाज़ की भनक तक न पहुँचने पाए। परिक्रमा (तवाफ़) करते वक़्त वह अपनी आँखें बंद रखने की कोशिश करता, ताकि मुहम्मद का सामना न होने पाए और आँखें चार होने से कहीं जादू असर न कर जाए।

(2)

कई दिन तक वह यही करता रहा लेकिन दिलों को बदलनेवाला कुछ और ही फ़ैसला कर चुका था और तुफ़ैल की क़िस्मत में जो परलोक की नेमत लिखी थी उसके मिलने की घड़ी आ पहुँची थी। एक दिन जब वह काबा की परिक्रमा करने के लिए आया तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) काबा में विराजमान थे और अल्लाह की वाणी (क़ुरआन) पढ़ रहे थे। संयोग की बात उसके कानों की रुई उस समय कुछ ढीली हो गई थी। क़ुरआन की कुछ आयतें उसके कान में पहुँची, तो उसने आँखें खोल दीं। उसकी नज़रें नबी करीम (सल्ल०) के होंठों पर पड़ीं। उनके हिलने से वह बहुत कुछ कलाम का अनुमान लगाता रहा। जितना वह ग़ौर करता, उसकी बेचैनी उतनी ही बढ़ती जाती। अन्ततः वह ख़ान-ए-काबा से वापस आ गया उसके दिल को किसी तरह चैन नहीं मिल रहा था। बेचैनी क्षण प्रति क्षण बढ़ती जा रही थी। इसी व्यग्रता की स्थिति में वह सोचने लगा —

"मेरे पालनहार ने मुझे सूझ-बूझ और समझ प्रदान की है, मैं मूर्ख नहीं हूँ, मैं काव्य और साहित्य का पारखी हूँ अज्ञानी नहीं हूँ, फिर आख़िर मुहम्मद से मिलने में क्या परेशानी है।"

वह इधर-उधर देखने लगा, हर तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था।

"आज मैं जितनी भी अधूरी बातें सुन सका हूँ, वह बहुत ही मधुर और प्रभावशाली थीं। वह वाणी इतनी सरल और अलंकारयुक्त थी कि आज तक मैंने वैसी वाणी कहीं नहीं सुनी। यह मेरा दुर्भाग्य होगा कि ऐसी वाणी से वंचित रहूँ।"

वह फिर अपने चारों तरफ़ नज़र दौड़ाने लगा, लेकिन वहाँ कोई भी न था।

"मैं ख़ुद मुहम्मद से क्यों न मिलूँ—और उनसे बातचीत क्यों न करूँ— इसमें हानि ही क्या है — उनकी बातें अच्छी होंगी तो सुनूँगा और मानूँगा, कोई ग़लत बात कहेंगे तो उसे नहीं मानूँगा।"

(3)

दूसरे दिन जब तुफ़ैल बिन अम्र काबा पहुँचे तो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को नमाज़ में लीन पाया— अल्लाह की याद में आपकी तल्लीनता और चमकते मुखमण्डल से फूटती हुई आभा देखकर वह अपने दिलपर क़ाबू न रख सके और स्वतः नबी (सल्ल०) की ओर बढ़ने लगे। यहाँ तक कि वे आप (सल्ल०) के बिलकुल निकट पहुँच गए। नबी (सल्ल०) की पवित्र ज़बान से जो शब्द निकल रहे थे, उन्हें वे दिल के कानों से सुनते रहे और झूमते रहे।

जब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) नमाज़ पढ़कर चलने लगे तो एक अनजाना आकर्षण तुफ़ैल को भी आप (सल्ल०) के पीछे-पीछे ले चला। उन्होंने नबी (सल्ल०) से सारी घटनाएँ बयान कर दीं। क़ुरैश के सरदारों की नसीहत और परिक्रमा के समय अपनी सावधानी— हुज़ूर (सल्ल०) के मकान पर पहुँचकर तुफ़ैल ने आदरपूर्वक निवेदन किया— "अब आप (सल्ल०) की ज़बान से आप (सल्ल०) का संदेश सुनना चाहता हूँ।"

"अच्छा बैठो— सुनो!" हुज़ूर (सल्ल०) ने उनके चेहरे पर एक दृष्टि डालते हुए कहा।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने क़ुरआन की कुछ आयतें पढ़ीं। अल्लाह की वाणी और फिर नबी (सल्ल०) की पवित्र ज़बान से सुनकर तुफ़ैल पर ईश-भय

और हृदय की आर्द्रता की एक विचित्र भावना छा गई। वे सुन रहे थे, झूम रहे थे और फूट-फूटकर रो रहे थे, अन्तत: बेचैन होकर बोल उठे—

> "ऐ अल्लाह के रसूल! जल्द ही मुझे अज्ञानता के अंधकार से निकालिए और सच्चाई के प्रकाश की ओर मेरा मार्गदर्शन कीजिए।"

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उनको तौहीद का कलिमा पढ़वाकर इस्लाम की गोद में ले लिया।

(4)

मक्का से वापस होकर जब हज़रत तुफ़ैल (रज़ि०) अपने घर पहुँचे तो सबसे पहले बूढ़े बाप से मिले। उन्होंने छूटते ही उनसे कहा— "आज से न मैं आपका और न आप मेरे।"

"क्यों बेटे—! ऐसा क्यों—?" बूढ़े बाप ने चकित होते हुए पूछा।

"मैंने मुहम्मद (सल्ल०) का धर्म (इस्लाम) क़ुबूल कर लिया है।" उन्होंने बड़े सन्तुष्ट भाव में जवाब दिया।

"बेटे—! मैं जानता हूँ कि तू बहुत समझदार है, तूने जो क़दम उठाया है, सोच समझकर उठाया होगा। अब जो तुम्हारा धर्म है वही मेरा धर्म है।" बाप ने सहज भाव से इस्लाम क़ुबूल करते हुए कहा।

हज़रत तुफ़ैल (रज़ि०) आनन्द विभोर होकर बाप से लिपट गए। वहाँ से आप अपनी पत्नी के पास आए और कहने लगे, "आज से मेरा-तेरा पति-पत्नी का रिश्ता समाप्त है।"

"मेरी माँ मुझे रोए— आख़िर मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ।" उनकी पत्नी ने दोनों हाथ अपने सिर पर मारते हुए पूछा।

"मैंने बाप-दादों का धर्म त्यागकर मुहम्मद (सल्ल०) का धर्म स्वीकार कर लिया है।" हज़रत तुफ़ैल (रज़ि०) ने बड़े इत्मीनान से जवाब दिया।

"यह कैसे हो सकता है कि मैं आपका साथ छोड़ दूँ।" उनकी पत्नी ने कहा।

इस तरह पूरे घराने ने इस्लाम क़बूल कर लिया।

कृपा की छत्रछाया में

हज़रत वहिया कलबी (रज़ि०) ने जब नबी करीम (सल्ल०) का पवित्र पत्र रूम के क़ैसर (बादशाह) हिरक़्ल के सामने पेश किया तो उसने नबी (सल्ल०) के बारे में बहुत से सवाल किए। हज़रत वहिया (रज़ि०) हर सवाल का सन्तोषजनक जवाब देते रहे। अन्ततः हिरक़्ल अपने सरदारों से बोला—

"अगर अरब का कोई और व्यक्ति यहाँ मौजूद हो तो कल उसे दरबार में पेश किया जाए।"

(2)

दरबार लोगों से खचा-खचा भरा हुआ था। हिरक़्ल बड़े ठाठ-बाट के साथ सिंहासन पर विराजमान था। सिंहासन के चारों तरफ़ धार्मिक पेशवा पंक्तिबद्ध खड़े हुए थे। इन्हीं में एक तरफ़ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के दूत वहिया कलबी (रज़ि०) भी मौजूद थे। इतने में कुछ अरब-व्यापारी दरबार में लाए गए, जो शाही आदाब के बाद एक ओर खड़े हो गए। व्यापारियों के दल के प्रधान अबू सुफ़ियान थे। ये अभी तक मुसलमान नहीं हुए थे, बल्कि नबी (सल्ल०) के कट्टर विरोधी और जानी दुश्मन थे। दरबार में सन्नाटा छाया हुआ था। इतने में हिरक़्ल अरब-व्यापारियों से सम्बोधित हुआ— "तुम में से नुबूवत का दावा करनेवाले का रिश्तेदार कौन है?"

"मैं हूँ, महामान्य!" अबू सुफ़ियान ने शाही शिष्टाचार का ध्यान रखते हुए जवाब दिया।

"मैं तुम्हारे सरदार से कुछ सवाल करूँगा," हिरक़्ल व्यापारियों की ओर मुड़ा, "अगर वह कोई जवाब ग़लत दे तो तत्काल टोक देना।"

"अवश्य-अवश्य!" व्यापारियों ने एक साथ जवाब दिया।

इसके बाद हिरक़्ल ने अबू सुफ़ियान से सवाल किया।

"नुबूवत के दावेदार का ख़ानदान कैसा है?"

"सभ्य और शुद्ध-रक्त है।" अबू सुफ़ियान ने जवाब दिया।

"सच कहते हो!" हिरक़्ल ने सिर हिलाते हुए कहा, "अल्लाह के पैग़म्बर

इसी तरह अपनी क़ौम के सभ्य ख़ानदान में भेजे जाते हैं।"

"अच्छा यह बताओ! इससे पूर्व भी कभी किसी ने उस ख़ानदान में नुबूवत का दावा किया था?"

"जी नहीं।"

"अगर ऐसा हुआ होता तो मैं समझता कि ख़ानदानी असर है।" हिरक़्ल ने स्पष्टीकरण किया।

"नुबूवत के दावे से पहले उसपर कभी झूठ बोलने का आरोप लगाया गया है?"

"क़भी नहीं—!" अबू सुफ़ियान जल्दी से बोल उठा, "वह तो हम में सबसे ज़्यादा सच्ची बात कहनेवाला है।"

"जो व्यक्ति लोगों से कभी झूठ नहीं बोलता" रूम के क़ैसर ने निर्णयात्मक ढंग से कहा, "वह ख़ुदा पर आरोप कैसे लगा सकता है।"

हिरक़्ल का यह जवाब सुनकर अबू सुफ़ियान सन्नाटे में आ गया और वह सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा।

"अच्छा यह बताओ!" हिरक़्ल ने फिर सवाल किया, "उसके बाप-दादा में कोई बादशाह भी हुआ है?"

"नहीं— कोई नहीं हुआ।" अबू सुफ़ियान ने कुछ खोए-खोए से भाव में जवाब दिया।

"अगर ऐसा हुआ होता" हिरक़्ल ने कहा, "तो मैं समझता कि उसको बादशाहत का लालच है।"

रूम के क़ैसर का यह जवाब सुनकर अबू सुफ़ियान फिर विचारों के सागर में डूब गया।

"जिन लोगों ने इस नए धर्म को स्वीकार किया है वह कमज़ोर लोग हैं या प्रभावशाली?" हिरक़्ल ने अगला सवाल किया।

"कमज़ोर लोग हैं।" अबू सुफ़ियान की ज़बान से सहसा निकल गया।

"सच है— नबियों के प्रथम अनुयायी सदा ग़रीब लोग ही होते हैं।"

इस जवाब से अबू सुफ़ियान के दिमाग़ पर एक और चोट पड़ी।

"यह तो बताओ— उसके अनुयायी बढ़ रहे हैं या घटते जाते हैं?"

"बढ़ रहे हैं!" अबू सुफ़ियान ने खोए हुए अन्दाज़ में जवाब दिया।

"सच्चा धर्म होने की एक पहचान यह भी है कि उसके अनुयायी बढ़ते जाते हैं।"

इस जवाब से अबू सुफ़ियान एक बार फिर चौंक पड़ा।

"क्या उसका कोई अनुयायी उसके धर्म से फिरा भी है?" हिरक़्ल का यह अगला सवाल था।

"नहीं—! कभी नहीं।"

"ईमानी मदिरा की मिठास ऐसी ही होती है कि मुँह से लगकर कभी नहीं छूटती।" हिरक़्ल ने कहा, "अच्छा यह बताओ! वह कभी वादे और वचन का उल्लंघन भी करता है?"

हिरक़्ल के इस सवाल पर अबू सुफ़ियान ने शत्रुतापूर्ण जवाब दिया, "अभी तक तो नहीं किया— लेकिन— अभी जो नया समझौता हुआ है देखिए उसपर दृढ़ रहता है या नहीं।"

"निस्संदेह नबी कभी वचन-भंग करनेवाले नहीं होते।"

अबू सुफ़ियान फिर किसी गहरे ख़याल में खो गया। ऐसा ज्ञात होता था जैसे उसका अन्त:करण धुल रहा हो।

"तुम लोगों ने उससे कभी जंग भी की?"

"जी हाँ— कई बार!"

"परिणाम क्या रहा—?"

"कभी हम विजयी रहे और कभी वह।"

"लेकिन—अन्तत: सफलता नबी को ही प्राप्त होती है।" हिरक़्ल ने सोचते हुए कहा "अच्छा यह तो बताओ— वह तुम से कहता क्या है?"

"हे महामहिम! वह कहता है कि एक प्रभु की उपासना करो। किसी और को उसका साझीदार न बनाओ, नमाज़ पढ़ो, ज़कात दो, सम्बन्धियों के साथ सद्व्यवहार करो, सच बोलो, पवित्र जीवन जियो।" अबू सुफ़ियान की आवाज़ में एक ख़ास प्रभाव पाया जा रहा था।

"अबू सुफ़ियान!" हिरक़्ल अबू सुफ़ियान से बोला, "अगर तुमने सच-सच जवाब दिए हैं, तो वह दिन दूर नहीं जब एक दिन वह व्यक्ति इस जगह का मालिक होगा, जहाँ मैं बैठा हुआ हूँ। काश! मैं सेवा में उपस्थित होता और उस नबी के पाँव धोया करता।"

इसके बाद हिरक़्ल ने आदेश दिया कि अरबी नबी (सल्ल०) का पवित्र पत्र पढ़कर सुनाया जाए। पवित्र पत्र को सुनकर अनेक आवाज़ें ऊँची होने लगीं और कोलाहल-सा मच गया। हिरक़्ल को अपनी सत्ता ख़तरे में नज़र आने लगी। इसलिए उसने मक्कावालों को शीघ्राति-शीघ्र विदा कर दिया। अबू सुफ़ियान धीरे-धीरे क़दम उठाते हुए रूमी क़ैसर के दरबार से बाहर निकले। उनका सिर झुका हुआ था और वे किसी गहरी सोच में डूबे हुए थे।

(3)

दिन गुज़रते रहे, मौसम बदलते रहे। लेकिन अबू सुफ़ियान के दिल की व्याकुलता बढ़ती ही रही। उनके मस्तिष्क के परदे पर बहुत-सी नई और पुरानी घटनाएँ लगातार चक्कर लगा रही थीं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ उनके द्वारा किया गया दुर्व्यवहार और उसके जवाब में नबी (सल्ल०) का सद्व्यवहार जब नज़रों के सामने घूम जाता तो वे तड़प उठते। उनकी गर्दन लज्जा से झुक जाती और वे कुछ सोचने पर मजबूर हो जाते।

इसी असमंजस में पूरे पौने दो वर्ष गुज़र गए। रमज़ान सन् 8 हिज़री में मक्कावालों को उनके द्वारा संधि-भंग करने की सज़ा देने के लिए मुसलमानों की एक विशाल सेना उनपर टूट पड़ी। आक्रमण इतनी शीघ्रता से किया गया था कि जब मुसलमान उनके सिर पर पहुँच गए, तब उनको ख़बर हुई। मक्कावाले घबरा उठे, उधर अबू सुफ़ियान की हालत विचित्र बेचैनी की थी। उनके दिल को शांति नहीं मिल रही थी। अन्ततः दिल के हाथों मजबूर होकर रिसालत के चिराग़ की ओर परवाने की तरह दौड़ पड़े। इस्लाम की सेना में पहुँचे तो गिरफ़्तार कर लिए गए। खिंचे-खिंचे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के समक्ष उपस्थित हुए। नबी (सल्ल०) ने उनकी ओर से अपना मुख फेर लिया।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का यह व्यवहार देखकर अबू सुफ़ियान तड़प उठे। उधर मुसलमानों की माँ हज़रत उम्मे सलमा यह दृश्य देख रही थीं। उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से इन शब्दों में अबू सुफ़ियान की सिफ़ारिश की—

"अबू सुफ़ियान आप (सल्ल०) के सगे चचा का बेटा है, उसके अपराधों को क्षमा कर दीजिए।" लेकिन नबी (सल्ल०) पर इस सिफ़ारिश का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अबू सुफ़ियान के दिल की व्याकुलता और बढ़ती जा रही थी। आख़िर हज़रत अली (रज़ि०) को एक उपाय सूझा। उन्होंने अबू सुफ़ियान को क़ुरआन पाक की वह आयत याद करा दी जो हज़रत यूसुफ़ (अलै०) के अपराधी भाइयों की ज़बान से निकली थी कि — 'तल्लाहि ल-क़द् आ-स-र कल्लाहु 'अलैना व इन् कुन्ना ल-ख़ातिईन" अर्थात् ख़ुदा की क़सम तुमको अल्लाह ने हमपर श्रेष्ठता प्रदान की और वास्तव में हम अपराधी थे। (क़ुरआन, 12:91) हज़रत अली (रज़ि०) का यह उपाय सफल हुआ। ज्यों ही अबू सुफ़ियान ने नबी (सल्ल०) के सामने जाकर यह आयत पढ़ी, नबी (सल्ल०) ने इसका वही जवाब दिया जो यूसुफ़ (अलै०) ने अपने अपराधी भाइयों को दिया था— "ला तस्री-ब अलैकुमुल् यौ-म। यग़्फ़िरुल्लाहु लकुम् व हु-व अर-हमुर्राहिमीन।" अर्थात् आज तुमपर कोई पकड़ नहीं, अल्लाह तुम्हें क्षमा करे, वह सबसे बढ़कर दया करनेवाला है। (क़ुरआन, 12:92)

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ज़बाने मुबारक से जब अबू सुफ़ियान ने ये शब्द सुने तो वे मारे ख़ुशी के फूले न समाए। उनकी ज़बान पर कलिम-ए-तैयबा प्रवाहित हो गया और विचित्र प्रेमातुर भाव में वे निम्नार्थी शेर पढ़ने लगे—

"जिस ज़माने में जंग का झण्डा मैं इस विचार से उठाता था कि लात (बुत का नाम) की फ़ौज मुहम्मद (सल्ल०) की फ़ौज को पराजित करे, उस ज़माने में मैं उस साही[1] जैसा था, जो अंधेरी रात में मारा-मारा फिरता है। अब वह ज़माना आ गया है कि मुझे हिदायत मिल जाए और मैं सीधा रास्ता अपना लूँ। मुझे अल्लाह का रास्ता उस व्यक्ति ने दिखाया जिसकी मैंने उपेक्षा की और जिसे मैंने छोड़े रखा।"

नबी (सल्ल०) ने जब यह शेर सुना तो फ़रमाया—"बेशक तुमने मुझे बहुत दिनों तक छोड़े रखा।" इसके बाद नबी (सल्ल०) ने अबू सुफ़ियान (रज़ि०) के साथ बहुत दया और कृपा का व्यवहार किया, यहाँ तक कि मक्का-विजय के दिन आप (सल्ल०) ने घोषणा कर दी कि—

"जो व्यक्ति अबू सुफ़ियान (रज़ि०) के घर में चला जाए उसके लिए अभयदान है।"

---

1. एक छोटा (बिल्ली से कुछ बड़ा) जानवर जिसका सारा शरीर तेज़ लम्बे काँटों से भरा रहता है।

अकेला शहीद

"मैं इस गंदे माहौल में अब अधिक दिनों तक नहीं रह सकता।" अब्दुल उज़्ज़ा ने अपने चारों ओर नज़रें दौड़ाते हुए कहा। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। सूरज अपनी पूरी चमक-दमक के साथ प्रकाशमान था। अब्दुल उज़्ज़ा पसीने में डूबे हुए उठकर खड़े हो गए।

"काश! चचा जान भी मुहम्मद (सल्ल०) का धर्म अपना लेते तो कितना अच्छा होता।" उन्होंने निराशाजनक स्वर में कहा।

कुछ दिन पहले किसी के द्वारा इस्लाम की दावत उनको पहुँच गई थी। यह उनके दिल की आवाज़ सिद्ध हुई। अब तो वे मदीना जाने के लिए बेचैन थे। चारों ओर का माहौल उन्हें काटे खाता था। वे जल्द से जल्द इससे निकलना चाहते थे, लेकिन चचा का सद्व्यवहार और उनके उपकार आड़े आ रहे थे। उनके सामने मुँह खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। दिल ही दिल में कुढ़ रहे थे, जिसका असर उनके स्वास्थ पर बहुत ख़राब पड़ रहा था। न कहीं आना, न जाना हर समय मौन रहना।

उनकी यह दशा देखकर आख़िरकार एक दिन उनके चचा ख़ुद उनसे पूछ बैठे—

"भतीजे! मैं देख रहा हूँ कि आजकल तुम कुछ खोए-खोए से रहते हो— आख़िर बात क्या है?"

"चचा जान—!" अब्दुल उज़्ज़ा ने सिर झुकाकर जवाब दिया "आपने मुझपर बहुत से उपकार किए, मेरा पालन-पोषण किया, मुझे ऊँट, बकरियाँ और ग़ुलाम दिए और ....."

"आज तुम यह कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो—" अब्दुल उज़्ज़ा को गले लगाते हुए उनके चचा ने कहा, "तुम मेरे भाई की यादगार हो— तुम्हारा पालन-पोषण मेरा कर्त्तव्य है।"

"काश— आप मुझपर एक उपकार और करते"— इतना कहकर अब्दुल उज़्ज़ा मौन हो गए।

"बोलो—बोलो—क्या चाहते हो?" चचा ने जल्दी से सवाल किया।

"आप मुझे मदीना जाने की अनुमति दे दीजिए।" अब्दुल उज़्ज़ा की नज़रें चचा के चेहरे पर थीं।

मदीने का नाम सुनते ही चचा चौंक पड़े और उनकी ज़बान से सहसा निकला।

"वहाँ जाकर क्या करोगे?"

"मैं बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहा था कि आख़िर वह पुण्य-तिथि कब आएगी, जब आपका दिल इस्लाम की ओर झुकेगा।" अब्दुल उज़्ज़ा आसमान की ओर नज़रें उठाए हुए कहे चले जा रहे थे "और आप और मैं दोनों....."

"चुप रहो—!" चचा ने डाँट दिया "लात[1] की क़सम अगर तू मृतक भाई की निशानी न होता तो इस उद्दण्डता का ऐसा दण्ड देता कि तू भी याद करता।"

"आप जो चाहें करें—" अब्दुल उज़्ज़ा का मौन-बाँध टूट चुका था "मैं अब अधिक दिनों तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता।"

"मैं अब मुसलमान होने जा रहा हूँ।" आवाज़ से दृढ़ता की परिपक्वता का प्रदर्शन हो रहा था।

"तू मुहम्मद का धर्म स्वीकार करना चाहता है?" चचा चीख़ पड़े।

"जी हाँ—" शांतिपूर्ण लहजे में अब्दुल उज़्ज़ा ने कहना शुरू किया, "वही धर्म जिसमें मेरी आपकी और सारी मानवता की भलाई है।"

"देख—! यह लात और हुबल[2] तुझे बरबाद कर देंगे।" चचा ने लाल-लाल आँखों से घूरते हुए धमकाया।

"क्या आपने नहीं सुनी—? अभी कल की बात है।" अब्दुल उज़्ज़ा की हिम्मत बढ़ गई थी, "मक्का फ़तह हो चुका है। शिर्क की गन्दगी से काबे को पाक किया जा चुका है—"

"भतीजे—!" चचा का लहजा नर्म पड़ गया था, "सोच ले तू क्या करने जा रहा है।"

"अच्छी तरह सोच लिया है।"

1.अरब की एक देवी (मूर्ति) का नाम

2. अरब के एक देवता का नाम।

"तू अपने बाप-दादा के तरीक़े और धर्म को ठुकराने जा रहा है, याद रख, उनकी आत्माएँ तुझसें बदला लेंगी।"

"मैं जितना भी ग़ौर करता हूँ, बुतों से मेरी घृणा उतनी ही बढ़ती जाती है।" अब्दुल उज़्ज़ा ने पूरे इत्मीनान के साथ जवाब दिया।

"मगर याद रख—!" कटु स्वर में चचा ने कहा "अपने साथ तू कुछ भी न ले जा सकेगा।"

"मेरे लिए बस मेरा शरीर ही काफ़ी है।" अब्दुल उज़्ज़ा ने नितांत ठण्डे लहजे में जवाब दिया।

"यह समस्त धन-सम्पत्ति तुझे यहीं छोड़ना होगा।" चचा ने फिर धमकी दी।

"पूर्व इसके कि मृत्यु इससे छुड़ा दे, मैं स्वयं इसको छोड़ता हूँ।" धमकी का मुँहतोड़ जवाब पाकर चचा ग़ुस्से से तिलमिला उठा "तुझे ख़ाली हाथ जाना होगा।"

"मेरे लिए ईमान की दौलत काफ़ी है।" अब्दुल उज़्ज़ा ने उपेक्षापूर्ण जवाब दिया।

"देख—! माँ की ममता से तू सदा के लिए वंचित हो जाएगा।" चचा ने दूसरे ढंग से आक्रमण किया।

"महान पथ-प्रदर्शक (सल्ल०) का स्नेहपूर्ण बरताव मेरे घायल दिल पर मरहम का काम देगा" अब्दुल उज़्ज़ा ने चचा के इस वार को भी ख़ाली जाने दिया।

"अपने-फ़ैसले के सम्बन्ध में दोबारा सोच समझ ले!"

"सोचने-समझने ही से यह सीधा रास्ता मिला है।"

"बदन पर जो कपड़े हैं उन्हें भी यहीं छोड़ना होगा।"

"मेरा अल्लाह शरीर ढकने का कोई और प्रबन्ध कर देगा।" यह कहकर अब्दुल उज़्ज़ा ने अपने सभी कपड़े उतार दिए। नग्न स्थिति में माँ से विदा लेने के लिए उनके सामने पहुँचे।

"यह क्या—?" माँ ने आश्चर्य से पूछा।

"मैं एकेश्वरवादी हो गया हूँ, चचा ने नाराज़ होकर सारे कपड़े उतरवा लिए हैं।" अब्दुल उज़्ज़ा ने जवाब दिया।

माँ ने एक कम्बल लाकर दिया। अब्दुल उज़्ज़ा ने उसके दो टुकड़े कर लिए।

एक को तहबन्द बना लिया और दूसरे को काँधे पर डाल लिया, फिर माँ से विदा होकर मदीने की ओर प्रस्थान कर गए।

(2)

अब्दुल उज़्ज़ा सुबह-सवेरे मस्जिदे नबवी के निकट पहुँच गए। थके-माँदे तो थे ही, मस्जिद की दीवार का सहारा लेकर बैठ गए। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नज़र जब उनपर पड़ी तो आप (सल्ल०) ने पूछा— "तुम कौन हो, कहाँ से आए हो?"

"मुसाफ़िर हूँ— मेरा नाम अब्दुल उज़्ज़ा है, अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की संगति से लाभ उठाने के उद्देश्य से उपस्थित हुआ हूँ।" अब्दुल उज़्ज़ा ने जवाब दिया।

"आज से तुम्हारा नाम अब्दुल्लाह है।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने स्नेहपूर्वक कहा, "और ज़ुलबजादेन (कम्बल के दो टुकड़ों वाला) उपाधि है।"

हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) को असहाबे सुफ़्फ़ा (जो नबी सल्ल० से विशेष रूप से धर्म की शिक्षा प्राप्त किया करते थे) में शामिल कर लिया गया। वे पूरी रुचि और लगन के साथ कुरआन करीम सीखने लगे। वे बड़ी ऊँची आवाज़ में कुरआन का पाठ किया करते थे।

एक दिन हज़रत उमर (रज़ि०) ने रसूल (सल्ल०) के दरबार में उनकी शिकायत की।

"जिस समय लोग नमाज़ अदा करते होते हैं, यह देहाती इतनी ऊँची आवाज़ से कुरआन पढ़ता है कि उनकी नमाज़ों में बाधा पड़ती है।"

"उमर—! इसे कुछ न कहो" ख़ुदा के नबी (सल्ल०) ने समझाते हुए जवाब दिया "यह तो ख़ुदा और रसूल के लिए अपना सब कुछ लुटाकर आया है।"

(3)

जंगे तबूक की तैयारियाँ हो रही थीं, हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और निवेदन किया—

"ऐ अल्लाह के रसूल! दुआ कर दीजिए कि मेरी शहादत की अभिलाषा पूरी हो जाए।"

नबी (सल्ल०) ने दुआ की — "ऐ अल्लाह! मैं काफ़िरों पर इसका ख़ून हराम करता हूँ।"

"ऐ अल्लाह के रसूल! मैं तो शहीद होने का इच्छुक हूँ।" अब्दुल्लाह (रज़ि०) ने चकित होकर निवेदन किया।

"घबराओ नहीं—!" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सांत्वना देते हुए कहा, "अगर तुम घर से जिहाद की नीयत से निकलो और रास्ते में चाहे तेज़ बुख़ार ही से मृत्यु को प्राप्त हो जाओ तब भी तुमको शहीद होने का दर्जा मिलेगा।"

और ऐसा ही हुआ। तबूक पहुँचकर अब्दुल्लाह (रज़ि०) को बुख़ार चढ़ आया, उसी बुख़ार में आप इस नश्वर दुनिया से कूच कर गए। तबूक में जंग का अवसर तो नहीं आया, क्योंकि दुश्मन मुक़ाबले पर नहीं आए थे। फिर भी हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) इस अभियान के अकेले शहीद थे। आपकी दफ़्न क्रिया रात में हुई। उस वक़्त का दृश्य भी ईर्ष्या का विषय था, जिससे प्रभावित होकर कुछ सहाबा (रज़ि०) ने यह अभिलाषा व्यक्त की थी—

"काश! इस क़ब्र में मैं दफ़्न किया गया होता।"

हज़रत बिलाल (रज़ि०) के हाथ में चिराग़ था। हज़रत अबू बक्र व उमर (रज़ि०) उनकी लाश को क़ब्र में उतार रहे थे। नबी करीम (सल्ल०) क़ब्र के अन्दर उतरे हुए थे और दोनों सहाबा (रज़ि०) से यह कहते जाते थे—

"अ-द-बन इला अख़ा कुमा" (अपने भाई को इज़्ज़त के साथ))

हुज़ूर (सल्ल०) ने क़ब्र पर ईंटें भी अपने ही पवित्र हाथों से रखी थीं और फिर दुआ फ़रमाई थी।

"ऐ अल्लाह आज शाम तक मैं इससे राज़ी रहा हूँ, तू भी इससे राज़ी हो जा।"